हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला—सं० ५४

प्रेम-चतुर्थी

लेखक—

सेवासदन, प्रेमाश्रम, प्रेम-पचीसी, प्रेम-पूर्णिमा, संग्राम, सप्तसरोज आदि के

रचयिता

"प्रेमचन्द"

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथमवार] फाल्गुन १९८५ [मूल्य ॥-)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
जगदीशनारायण तिवारी
वणिक् प्रेस,
१, सरकार लेन,
कलकत्ता।

निवेदन

आज हमें हिन्दी संसारके सामने प्रेमचन्दजीकी बहुत ही अनूठी ४ कहानियोंका संग्रह प्रेम-चतुर्थीके नामसे हिन्दी पुस्तक एजेंसी मालाकी ५४ वीं संख्याके रूपमें उपस्थित करते बहुत ही आनन्द हो रहा है।

यद्यपि असहयोगके जमानेमें असहयोग-मालाकी पुस्तिकाओंमें इसमेंकी दो कहानियां ट्रैक्टोंके रूपमें पृथक् पृथक् निकल चुकी हैं परन्तु वह प्रकाशन स्थाई न रहनेके कारण इन अनोखी कहानियोंका रसस्वादन सर्वसाधारणको आजकल उपलब्ध नहीं है, इसी अभावकी पूर्त्तिके लिये हमने इसको पुस्तकरूपमें प्रकाशन कर देना ही उचित समझा। इसकी चारों कहानियां बहुत ही मार्मिक हैं। प्रत्येक कहानी किसी खास विषयको लेकर लिखी गई है इसलिये पाठकोंको पढ़ते समय घटनाका ऐसा भान होना स्वाभाविक ही है कि मानों वह आंखोंके सामने ही घट रही हों, और यही एक ऐसी बात है जो श्रीप्रेमचन्दजीकी विशेषता है।

विनीत

—प्रकाशक

सूची

१

लखनऊ नेशनल बैंकके बड़े दफ्तरमें लाला साईंदास आराम कुर्सीपर लेटे हुए शेयरोंका भाव देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस बार हिस्सेदारोंको मुनाफा कहांसे दिया जायगा? चाय, कोयला, या जूटके हिस्से ख़रीदने, चांदी, सोने या रूईका सट्टा करनेका इरादा करते लेकिन नुक़सानके भयसे कुछ तै न कर पाते थे। नाजके व्यापारमें इस बार बड़ा घाटा रहा, हिस्सेदारोंके ढाढ़सके लिए हानिलाभका कल्पित व्यौरा दिखाना पड़ा और नफ़ा पूंजीसे देना पड़ा। इससे फिर नाजके व्यापारमें हाथ डालते जी कांपता था।

पर रुपयेको बेकार पड़ा रखना असम्भव था। दो एक दिनमें उसे कहीं-न-कहीं लगानेका उचित उपाय करना जरूरी था, क्योंकि डाइरेक्टरोंकी तिमाही बैठक एक ही सप्ताहमें होनेवाली थी, और यदि उस समय कोई निश्चय न हुआ तो आगे तीन महीनेतक फिर कुछ न हो सकेगा और छःमाहीके मुनाफेके बटवारेके समय फिर वही

फरजी कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसका बारबार सहन करना बैंकके लिए कठिन था। बहुत देरतक इस उलझनमें पड़े रहनेके बाद साईं-दासने घण्टी बजायी, इसपर बगलके दूसरे कमरेसे एक बंगाली बाबू-ने सिर निकालकर झांका।

साईंदास—टाटा स्टील कम्पनीको एक पत्र लिख दीजिए कि अपना नया बैलेंस शीट भेज दें।

बाबू—उन लोगोंको रुपयाका गरज़ नहीं। चिट्ठीका जवाब नहीं देता।

साईंदास—अच्छा नागपूरकी स्वदेशी मिलको लिखिए।

बाबू—इसका कारोबार अच्छा नहीं है। अभी उसके मजूरोंने हड़ताल किया था। दो महीनातक मील बन्द रहा।

साईंदास—अजी तो कहीं लिखो भी। तुम्हारी समझमें तो सारी दुनिया बेईमानोंसे भरी है।

बाबू—बाबा लिखनेको तो हम सब जगह लिख दें, मगर खाली लिख देनेसे तो कुछ लाभ नहीं होता।

लाला साईंदास अपनी कुल प्रतिष्ठा और मर्यादाके कारण बैंकके मैनेजिंग डाइरेक्टर हो गये थे, पर व्यवहारिक बातोंसे अपरिचित थे। यही बंगाली बाबू इनके सलाहकार थे और बाबू साहबको किसी कारखाने या कम्पनीपर भरोसा न था। इन्हींके अविश्वासके कारण पिछले साल बैंकका रुपया सन्दूकसे बाहर न निकल सका था और अब वही रङ्ग फिर दिखायी देता था। साईंदासको इस कठिनाईसे बचनेका कोई उपाय न सूझता था। न इतनी हिम्मत थी कि अपने

भरोसे किसी व्यापारमें हाथ डालें। बेचैनीकी दशामें उठकर कमरेमें टहलने लगे, कि दरबानने आकर खबर दी—बरहलकी महारानीकी सवारी आयी है।

२

लाला साईंदास चौंक पड़े। बरहलकी महारानीको लखनऊ आये तीन-चार दिन हुए थे और हरेकके मुंहसे उन्हींकी चर्चा सुनायी देती थी। कोई पहनावपर मुग्ध था, कोई सुन्दरता-पर, कोई उनकी स्वच्छन्द वृत्तिपर। यहांतक कि उनकी दासियां और सिपाही आदि भी लोगोंके चर्चापात्र बने हुए थे। रायल होटलके द्वारपर दर्शकोंकी भीड़-सी लगी रहती। कितने ही शौक़ीन बेफ़िक्रे, इतरफ़रोश, बज़ाज़, तम्बाकूगरका वेष धरकर उनका दर्शन कर चुके थे। जिधरसे महारानीकी सवारी निकल जाती दर्शकोंको ठट्ठ लग जाते थे। वाह वाह क्या शान है! ऐसी इराक़ी जोड़ी लाट साहबके सिवा किसी राजा रईसके यहाँ तो शायद ही निकले, और सजावट भी क्या ख़ूब है! भई ऐसे गोरे आदमी तो यहाँ कभी नहीं दिखाई देते। यहां तो धनाढ्य लोग मृगांक और चन्द्रोदय और ईश्वर जाने क्या-क्या खाक-बला खाते रहते हैं, परन्तु किसीके बदनपर तेज या प्रकाशका नाम नहीं। यह लोग न जानें क्या भोजन करते और किस कूयेंका जल पीते हैं कि जिसे देखिए ताज़ा सेब बना हुआ है। यह सब जलवायुका प्रभाव है।

बरहल उत्तर दिशामें नैपालके समीप अंग्रेजी राज्यमें एक

रियासत थी। यद्यपि जनता उसे बहुत मालदार समझती थी पर वास्तवमें उस रियासतकी आमदनी दो लाखसे अधिक न थी। हाँ क्षेत्रफल बहुत विस्तृत था। बहुत भूमि ऊसर और उजाड़ थी। बसा हुआ भाग भी पहाड़ी और अनुपजाऊ था और जमीन बहुत सस्ती उठती थी।

लाला साईंदासने तुरत अलगनीसे उतारकर रेशमी सुट पहन लिया और मेज़पर आकर इस शानसे बैठ गये मानों राजा रानियों-का यहां आना कोई असाधारण बात नहीं है। दफ्तरके क्लर्क भी संभल गये। सारे बैंकमें सन्नाटेकी हलचल पैदा हो गयी। दरवानने पगड़ी संभाली। चौकीदारने तलवार निकाली और अपने स्थान-पर खड़ा हो गया। पंखाकुलीकी मीठी नींद भी टूटी और बंगाली बाबू महारानीके स्वागतके लिये दफ्तरसे बाहर निकले।

साईंदासने बाहरी ठाठ तो बना लिया किन्तु चित्त आशा और भयसे चंचल हो रहा था। एक रानीसे व्यवहार करनेका यह पहला ही अवसर था, घबराते थे कि बात करते बने या न बने, रईसोंका मिज़ाज आसमानपर होता है। मालूम नहीं मैं बात करनेमें कहां चूक जाऊँ। उन्हें इस समय अपनेमें एक कमी मालूम हो रही थी। वह राजसी नियमोंसे अनभिज्ञ थे। उनका सम्मान किस प्रकार करना चाहिए, उनसे बातें करनेमें किन बातोंका ध्यान रखना चाहिए, उनकी मर्यादा रक्षाके लिए कितनी नम्रता उचित है, इस प्रकारके प्रश्नोंसे वह बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे और जी चाहता था कि किसी तरह इस परीक्षासे शीघ्र मुक्ति हो जाय। व्यापारियों

और मामूली जमींदारों या रईसोंसे वह रुखाई और सफ़ाईका बर्ताव किया करते थे और पढ़े-लिखे सज्जनोंसे शील और शिष्टताका। उन अवसरोंपर उन्हें किसी विशेष विचारकी आवश्यकता न होती थी पर उन्हें इस समय ऐसी परेशानी हो रही थी, जैसी किसी लङ्कावासीको तिब्बतमें हो, जहांके रस्म व रवाज और बातचीतका उसे ज्ञान न हो।

यकायक उनकी दृष्टि घड़ीपर पड़ी। तीसरे पहरके चार बज चुके थे परन्तु घड़ी अभी दो पहरकी नींदमें मग्न थी। तारीख़की सूईने दौड़में समयको भी मात कर दिया था। वह जल्दीसे उठे कि घड़ीको ठीक कर दें कि इतनेमें महारानीका कमरेमें पदार्पण हुआ। साईंदासने घड़ीको छोड़ा और महारानीके निकट जा बगलमें खड़े हो गये। निश्चय न कर सके कि हाथ मिलाऊं या झुककर सलाम करूं। रानीजीने स्वयं हाथ बढ़ाकर उन्हें इस उलझनसे छुड़ाया।

जब लोग कुर्सियोंपर बैठ गये तो रानीके प्राइवेट सेक्रेटरीने व्यवहारी बातचीत आरम्भ की। बरहलकी पुरानी गाथा सुनानेके बाद उसने उन उन्नतियोंका वर्णन किया जो रानी साहिबाके प्रयत्नसे हुई थीं। इस समय नहरोंकी एक शाख निकालनेके लिए दस लाख रुपयोंकी आवश्यकता थी और यद्यपि रानी साहिबा किसी अङ्गरेजी बैंकसे रुपये ले सकती थीं, परन्तु उन्होंने एक हिंदुस्तानी बैंकसे ही काम करना अच्छा समझा। अब यह निर्णय नेशनल बैंकके हाथमें था कि वह इस अवसरसे लाभ उठाना चाहता है या नहीं?

बंगाली बाबू—हम रुपया दे सकता है; मगर कागज-पत्तर देखे विना कुछ नहीं कर सकता।

सेक्रेटरी—आप कोई ज़मानत चाहते हैं ?

साईंदास उदारतासे बोले, महाशय, ज़मानतके लिए आपकी ज़बान काफ़ी है।

बंगाली बाबू—आपके पास रियासतका कोई हिसाब किताब है ?

लाला साईंदासको अपने हेडक्लर्कका यह दुनियादारीका बर्ताव अच्छा न लगता था। वह इस समय उदारताके नशेमें चूर थे। महारानीकी सूरत ही एक ज़मानत थी, उनके सामने कागज और हिसाबका वर्णन करना बनियापन जान पड़ता था जिससे अविश्वासकी गन्ध आती है।

महिलाओंके सामने हम शील और संकोचके पुतले बन जाते हैं। बंगाली बाबूकी ओर क्रूर, कठोर दृष्टिसे देखकर बोले कि कागज़ोंकी जांच कोई आवश्यक बात नहीं है, केवल हमको विश्वास होना चाहिए।

बंगाली बाबू—डाइरेक्टर लोग कभी न मानेगा।

साईंदास—हमको इसकी परवा नहीं। हम अपनी जिम्मेदारीपर रुपये दे सकते हैं।

रानीने साईंदासकी ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे देखा। उनके होठोंपर हलकी मुस्कुराहट दिखलायी पड़ी।

३

परन्तु डाइरेक्टरोंने हिसाब-किताब, आय-व्यय देखना आव-

श्यक समझा और यह काम लाला साईंदासके ही सुपुर्द हुआ क्योंकि और किसीको अपने कामोंसे फ़ुर्सत न थी कि एक पूरे दफ्तरका मुआइना करता। साईंदासने नियम पालन किया। तीन-चार दिनतक हिसाब जांचते रहे। तब अपने इतमीनानके अनुकूल रिपोर्ट लिखी। मामला तय हो गया। दस्तावेज़ लिखा गया, रुपया दिया गया, ६) सैकड़े ब्याज ठहरा।

तीन सालतक बैंकके कारबारमें अच्छी उन्नति हुई। छठे महीने बिना कहे सुने पैंतालीस हजारकी थैली दफ्तरमें आ जाती थी। व्यवहारियोंको ५) सैकड़े ब्याज दे दिया जाता था। हिस्सेदारोंको ७) सैकड़े लाभ।

साईंदाससे सब लोग प्रसन्न थे। सब लोग उनकी सूझ-बूझकी प्रशंसा करते थे, यहांतक कि बंगालीबाबू भी धीरे-धीरे उनके क़ायल होते जाते थे। साईंदास उनसे कहा करते, बाबूजी! विश्वास संसारसे न कभी लोप हुआ है और न होगा। सत्यपर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है। जिस मनुष्यके चित्तसे यह विश्वास जाता रहता है उसे मृतक समझना चाहिए। उसे जान पड़ता है कि मैं चारों शत्रुओंसे घिरा हुआ हूं। बड़ेसे बड़ा सिद्ध महात्मा भी उसे रंगा हुआ सियार जान पड़ता है। सच्चेसे सच्चा देश-प्रेमी उसकी दृष्टिमें अपनी प्रशंसाका भूखा ही ठहरता है। संसार उसे धोखे और छलसे परिपूर्ण दिखाई देता है। यहांतक कि उसके मनसे परमात्मापर श्रद्धा और भक्ति लुप्त हो जाती है। एक प्रसिद्ध फ़िलास्फरका कथन है कि प्रत्येक मनुष्यको जबतक कि उसके

विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न पाओ भलामानस समझो। वर्तमान शासन-प्रथा इसी महत्वपूर्ण सिद्धान्तपर गठित है। और घृणा तो किसीसे करनी ही न चाहिए। हमारी आत्माएं पवित्र हैं, उनसे घृणा करना परमात्मासे घृणा करनेके समान है। यह मैं नहीं कहता कि संसारमें कपट-छल है ही नहीं; है और बहुत अधिकतासे है, परन्तु उसका निवारण अविश्वाससे नहीं, मानवचरित्रके ज्ञानसे होता है। और यह एक ईश्वरदत्त गुण है। मैं यह दावा तो नहीं करता, परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं मनुष्यको देखकर उसके आन्तरिक भावोंतक पहुंच जाता हूं। कोई कितना ही वेष बदले, रंगरूप संवारे, परन्तु मेरी अन्तःदृष्टिको धोखा नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विश्वाससे विश्वास उत्पन्न होता है और अविश्वाससे अविश्वास। यह प्राकृतिक नियम है। जिस मनुष्यको आप आरम्भसे ही धूर्त, कपटी; दुर्जन समझ लेंगे वह कभी आपसे निष्कपट व्यवहार न करेगा। वह हठात् आपको नीचा दिखानेका यत्न करेगा। इसके विपरीत, आप एक चोरपर भी भरोसा करें तो वह आपका दास हो जायगा। सारे संसारको लूटे परन्तु आपको धोखा न देगा। वह कितना ही कुकर्मी, अधम क्यों न हो पर आप उसके गलेमें विश्वासकी जंजीर डालकर उसे जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं, यहांतक कि वह आपके हाथों पुण्यात्मा बन सकता है।

वङ्गाली बाबूके पास इन दार्शनिक तर्कोंका कोई उत्तर न था।

४

चौथे वर्षकी पहली तारीख थी। लाला साईंदास बैंकके दफ्तरमें बैठे हुए डाकियेकी राह देख रहे थे। आज बरहलसे पैंतालीस हजार रुपये आवेंगे। अबकी उनका इरादा था कि, कुछ सजावटके सामान और मोल लें। अबतक बैंकमें टेलीफोन नहीं था इसका भी तखमीना मांग लिया था। आशाकी आभा चेहरेसे झलक रही थी! बङ्गाली बाबूसे हंसकर कहते थे इस तारीखको मेरे हाथोंमें अदबदाके खुजली होने लगती है आज भी हथेली खुजला रही है। कभी दफ्तरीसे कहते, अरे मियां शफक़त! जरा शकुन तो विचारो, केवल सूद ही सूद आ रहा है या दफ्तरवालोंके लिए नजराना शुकराना भी है। आशाका प्रभाव कदाचित स्थानपर भी होता है। बैंक आज खिला हुआ दिखलायी पड़ता था।

डाकिया ठीक समय आया। साईंदासने लापरवाईसे उसकी ओर देखा। उसने अपने थैलेसे कई रजिस्टरी लिफाफे निकाले साईंदासने उन लिफाफोंको उड़ती निगाहसे देखा। बरहलका कोई लिफाफा न था। न बीमा, न मुहर, न वह लिखावट। कुछ निराशा सी हुई। जीमें आया डाकियेसे पूछें। कोई और रजिस्टरी रह तो नहीं गयी। पर रुक गये। दफ्तरके क्लर्कोंके सामने इतना अधैर्य्य अनुचित था। किन्तु जब डाकिया चलने लगा तब उनसे न रहा गया। पूछ ही बैठे। अरे भाई, कोई बीमा लिफाफा रह तो नहीं गया? आज उसे आना चाहिए था। डाकियेने कहा, सरकार,

भला ऐसी बात है और कहीं भूल चूक हो जाय पर आपके काममें भूल हो सकती है ?

साईंदासका चेहरा उतर गया, जैसे कच्चे रङ्गपर पानी पड़ जाय। डाकिया चला गया तो बंगाली बाबूसे बोले, यह देर क्यों हुई ? और तो कभी ऐसा न होता था।

बंगाली बाबूने निष्ठुरभावसे उत्तर दिया, किसी कारणसे देर हो गया होगा। घबरानेका कोई बात नहीं।

निराशा असम्भवको सम्भव बना देती है। साईंदासको इस समय यह खयाल हुआ कि कदाचित पारसलसे रुपये आते हों। हो सकता है तीन हजार अशरफियोंका पारसल करा दिया हो। यद्यपि इस विचारको औरोंपर प्रकट करनेका उन्हें साहस न हुआ पर उन्हें यह आशा उस समयतक बनी रही जबतक पारसलवाला डाकिया वापस नहीं गया। अन्तमें सन्ध्याको वह बेचैनीकी दशामें उठकर घर चले गये। अब खत या तारका इन्तजार था। दो तीन बार झुंझलाकर उठे कि डांटकर पत्र लिखूं और साफ़-साफ़ कह दूं कि लेन देनके मामलेमें वादा पूरा न करना विश्वासघात है, एक दिनकी देर भी बैंकके लिए घातक हो सकती है, कि जिसमें फिर कभी ऐसी शिकायत करनेका अवसर न मिलेगा। परन्तु फिर कुछ सोचकर न लिखा।

शाम हो गयी थी कई मित्र आ गये। गपशप होने लगी, कि पोस्टमैनने आकर शामकी डाक साईंदासको दी। यों वह पहले अखबारोंको खोला करते थे। पर आज चिट्ठियां खोलीं। किन्तु

बरहलका कोई खत न था। तब बेमन हो एक अंग्रेजी अखबार और पहले ही तारका शीर्षक लेख देखकर उनका खून सर्द हो गया।

कल शामको बरहलकी महारानीजीका तीन दिनकी बीमारीके बाद देहान्त हो गया।

इसके आगे एक संक्षेप नोटमें यह लिखा हुआ था :—

"बरहलकी महारानीकी अकाल मृत्यु केवल इस रियासतके लिए ही नहीं, किन्तु समस्त प्रान्त के लिए एक शोकजनक घटना है। बड़े बड़े भिषगाचार्य (वैद्यराज) अभी रोग की परख भी न कर पाये थे कि मृत्युने काम तमाम कर दिया। रानीजीको सदैव अपनी रियासतकी उन्नतिका ध्यान रहता था। उनके थोड़े राज्यकालमें उनसे रियासतको जो लाभ हुए हैं, वे चिरकालतक स्मरण रहेंगे। यद्यपि यह मानी हुई बात थी कि, राज्य उनके बाद दूसरेके हाथमें जायगा तथापि यह विचार कभी रानी साहिबाके कर्त्तव्य-पालनका बाधक नहीं बना। शास्त्रानुसार उन्हें रियासतकी ज़मानतपर ऋण लेनेका अधिकार न था। परन्तु प्रजाकी भलाईके विचारसे उन्हें कई बार इस नियमका उल्लंघन करना पड़ा। हमें विश्वास है कि यदि वह कुछ दिन और जीवित रहतीं तो रियासतको ऋणसे मुक्त कर देतीं। उन्हें रात-दिन इसका ध्यान रहता था। परन्तु असामयिक—मृत्युने अब यह फैसला दूसरोंके अधीन कर दिया। देखना चाहिए इन दोनोंका क्या परिणाम होता है। हमें विश्वस्त रीतिसे मालूम हुआ है कि नये महाराजने जो आजकल लखनऊमें विराजमान हैं, अपने वकीलोंकी सम्मतिके अनुसार मृतक महारानीके ऋण सम्बन्धी हिसाबोंके

चुकानेसे इनकार कर दिया है। हमें भय है कि, इस निश्चयसे महाजनी टोलेमें बड़ी हलचल पैदा होगी और कितनेही धन सम्पत्तिके लखनऊके स्वामियोंको शिक्षा मिल जायगी कि ब्याजका लोभ कितना अनिष्टकारी होता है।"

लाला साईंदासने अखबार मेज़पर रख दिया और आकाशकी ओर देखा, जो निराशाका अन्तिम आश्रय है। अन्य मित्रोंने यह समाचार पढ़ा। इस प्रश्नपर वाद-विवाद होने लगा। साईंदासपर चारों ओरसे बौछार पड़ने लगी। सारा दोष उनके सिर मढ़ा गया और उनकी चिरकालिक कार्य्य-कुशलता और परिणामदर्शिता मिट्टीमें मिल गयी। बैंक इतना बड़ा घाटा सहनेमें असमर्थ था। अब यह विचार उपस्थित हुआ कि कैसे उसकी प्राणरक्षा की जाय।

५

ज्योंही शहरमें यह खबर फैली, लोग अपने रुपये वापस लेनेके लिए आतुर हो गये। सुबहसे शामतक लेनदारोंका तांता लगा रहता था, जिन लोगोंका धन चलतू हिसाबमें जमा था उन्होंने तुरत निकाल लिया, कोई उज़्र न सुना। यह उसी पत्रके लेखका फल था कि नेशनल बैंककी साख उठ गयी थी। धीरजसे काम लेते तो बैंक संभल जाता परन्तु आंधी और तूफ़ानमें कौनसी नौका स्थिर रह सकती है। अन्तमें खज़ांनचीने टाट उलट दिया। बैंककी नसोंसे इतनी रक्त-धारें निकलीं कि वह प्राणरहित हो गया।

तीन दिन बीत चुके थे। बैंकघरके सामने सहस्रों आदमी एकत्र थे। बैंकके द्वारपर सशस्त्र सिपाहियों का पहरा था। नाना प्रकारको

अफवाहें उड़ रही थीं। कभी खबर उड़ती, लाला साईंदासने विष पान कर लिया। कोई उनके पकड़े जानेकी सूचना लाता था। कोई कहता था डाइरेक्टर हवालातके भीतर हो गये।

यकायक सड़कपरसे एक मोटर निकला और बैंकके सामने आकर रुक गया। किसीने कहा, बरहलके महाराजाका मोटर है। इतना सुनतेही सैकड़ों मनुष्य मोटरकी ओर घबराये हुए दौड़े और मोटरको घेर लिया।

कुंवर जगदीशसिंह महारानीकी मृत्युके बाद वकीलोंसे सलाह लेने लखनऊ आये थे। बहुत कुछ सामान भी खरीदना था। वे इच्छायें जो चिरकालसे ऐसे सुअवसरकी प्रतीक्षामें थीं अब बंधे पानीकी भांति राह पाकर उबली पड़ती थीं। यह मोटर आज ही लिया गया था। नगरमें एक कोठी लेनेकी बातचीत हो रही थी। बहुमूल्य विलास वस्तुओंसे लदी एक गाड़ी बरहलके लिए चल चुकी थी। यहां भीड़ देखी तो सोचा कि कोई नवीन नाटक होनेवाला है। मोटर रोक दिया कि इतनेमें सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लग गयी।

कुंवर साहबने पूछा, यहां आपलोग क्यों जमा हैं ? कोई तमाशा होनेवाला है क्या ?

एक महाशय जो देखनेमें बिगड़े रईस मालूम होते थे, बोले, जी हां, बड़ा मजेदार तमाशा है।

कुंवर—किसका तमाशा है।

.........तकदीरका।

कुंवर महाशयको यह उत्तर पाकर आश्चर्य तो हुआ। परन्तु सुनते आये थे कि लखनऊवाले बात-बातमें बात निकाला करते हैं। इसी ढंगसे उत्तर देना आवश्यक हुआ। बोले, तक़दीरका खेल देखनेके लिए यहां आना तो आवश्यक नहीं।

लखनवी महाशयने कहा, आपका कहना सच है, लेकिन दूसरी जगह यह मजा कहां? यहां सुबहसे शामतकके बीचमें भाग्यने कितनोंको धनीसे निर्धन और निर्धनसे भिखारी बना दिया। सवेरे जो लोग महलोंमें बैठे थे इस समय उन्हें वृक्षकी छाया भी नसीब नहीं। जिनके द्वारपर सदाव्रत खुले थे उन्हें इस समय रोटियोंके लाले पड़े हैं। अभी एक सप्ताह पहले जो लोग कालगति, भाग्यके खेल और समयके फेरको कवियोंकी उपमा समझते थे, इस समय उनकी आह और करुणाक्रन्दन वियोगियोंको भी लज्जित करता है। ऐसे तमाशे और कहां देखनेमें आवेंगे।

कुंवर—भगवन्, आपने तो पहेलीको और गूढ़ कर दिया। मैं देहाती हूं, मुझसे साधारण तौरसे बात कीजिए।

इसपर एक सज्जनने कहा, महोदय, यह नेशनलबैंक है। इसका दिवाला निकल गया है। आदाब अर्ज़, मुझे पहचाना? कुंवर महोदयने उनकी ओर देखा तो मोटरसे कूद पड़े और उनसे हाथ मिलाते हुए बोले, अरे मिस्टर नसीम? तुम यहां कहां, भाई तुमसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ।

मिस्टर नसीम कुंवर साहबके साथ देहरादून कालेजमें पढ़ते थे। दोनों साथ-साथ देहरादूनकी पहाड़ियोंपर सैर करने जाया करते थे

परन्तु जबसे कुंवर महाशयने घरके झंझटोंसे विवश होकर कालेज छोड़ा, दोनों मित्रोंमें भेंट न हुई थी। नसीम भी उनके आनेके कुछ समय पीछे अपने घर लखनऊ चले आये थे।

नसीमने उत्तर दिया, शुक्र है, आपने पहचाना तो। कहिये अब तो पौ बारह है। कुछ दोस्तोंकी भी सुध है?

कुंवर—सच कहता हूं, तुम्हारी याद हमेशा आया करती थी। कहो आरामसे तो हो। मैं रायल होटलमें टिका हुआ हूं, आज आओ तो इतमीनानसे बातचीत हो।

नसीम—जनाब,इतमीनान तो नेशनल बैंकके साथ चला गया। अब तो रोज़ीकी फ़िक्र सवार है। जो कुछ जमा पूंजी थी, सब आपको भेंट हुई। इस दीवालेने फ़क़ीर बना दिया। अब आपके दरवाज़ेपर आकर धरना दूंगा।

कुंवर—तुम्हारा घर है। बेखटके आओ। मेरे साथ ही क्यों न चलो। क्या बतलाऊं मुझे कुछ भी ध्यान नहीं था कि मेरे इनकार करनेका यह असर होगा। जान पड़ता है, बैंकने बहुतेरोंको तबाह कर दिया।

नसीम—घर-घर मातम छाया हुआ है। मेरे पास तो इन कपड़ोंके सिवा और कुछ नहीं रहा।

इतनेमें एक तिलकधारी पंडितजी आ गये और बोले, महाराज, आपके शरीरपर वस्त्र तो हैं, यहां तो धरती आकाश कहीं ठिकाना नहीं है। मैं राघोजी पाठशालाका अध्यापक हूं। पाठशालाका सब धन इसी बैंकमें जमा था। पचास विद्यार्थी इसीके आसरे

संस्कृत पढ़ते थे और भोजन पाते थे। कलसे पाठशाला बन्द हो जायगी। दूर-दूरके विद्यार्थी हैं। वे अपने घर किस प्रकार पहुंचेंगे, यह ईश्वर ही जाने।

एक महाशय जिनके सिरपर पंजाबी ढंगकी पगड़ी थी, गाढ़ेका कोट और चमरौधा जूता पहने हुए थे, आगे बढ़ आये और नेतृत्वके भावसे बोले, महाशय, इस बैंकके फेलियरने कितने ही इन्सटीट्यूशनोंको समाप्त कर दिया। लाला दीनानाथका अनाथालय अब एक दिन भी नहीं चल सकता। उसका एक लाख रुपया डूब गया। अभी पंद्रह दिन हुए मैं डेपूटेशनसे लौटा तो पंद्रह हज़ार रुपये अनाथालय-कोशमें जमा किये थे, मगर अब कहीं कौड़ीका ठिकाना नहीं।

एक बूढ़ेने कहा, साहब, मेरी तो ज़िन्दगीभरकी कमाई मिट्टीमें मिल गयी अब कफ़नका भी भरोसा नहीं।

धीरे-धीरे और लोग एकत्र हो गये और साधारण बातचीत होने लगी। प्रत्येक मनुष्य अपने पासवालेको अपनी दुःख कथा सुनाने लगा। कुंवर महोदय आध घंटातक नसीमके साथ खड़े ये विपद्-कथाएं सुनते रहे। ज्योंही मोटरपर बैठे और होटलकी ओर चलनेकी आज्ञा दी, त्योंही उनकी दृष्टि एक मनुष्यपर पड़ी, जो पृथ्वीपर सिर झुकाये बैठा था। यह एक अहीर था, लड़कपनमें कुंवरसाहबके साथ खेला था। उस समय उनमें ऊंच-नीचका विचार न था। साथ कबड्डी खेले थे। साथ पेड़ोंपर चढ़े और चिड़ियोंके बच्चे चुराये थे। जब कुंवरजी देहरादून पढ़ने गये, तब वह अहीरका लड़का शिवदास अपने बापके साथ लखनऊ चला आया। उसने

यहां एक दूधकी दूकान खोल ली थी। कुंवर साहबने उसे पहिचाना और उच्च स्वरसे पुकारा, अरे शिवदास ! इधर देखो।

शिवदासने बोली सुनी, परन्तु सिर ऊपर न उठाया। वह अपने स्थानसे बैठाही कुंवर साहबको देख रहा था। बचपनके वह दिन याद आ रहे थे, जब वह जगदीशके साथ गुल्ली-डंडा खेलता था, जब दोनों बुड्ढे गफ़ूर मियांका मुंह चिढ़ाकर घरमें छिप जाते थे, जब वह इशारेसे जगदीशको गुरुजीके पाससे बुला लेता और दोनों रामलीला देखने चले जाते। उसे विश्वास था कि कुंवरजी मुझे भूल गये होंगे। वह लड़कपनकी बातें, अब कहां, कहां मैं और कहां वह ! लेकिन जब कुंवर साहबने उसका नाम लेकर बुलाया तो उनसे प्रसन्न होकर मिलनेके बदले उसने और भी सिर नीचा कर लिया और वहांसे टल जाना चाहा। कुंवर साहबकी सहृदयतामें अब वह साम्य भाव न था। मगर कुंवर साहब उसे हटते देखकर मोटर-से उतरे और उसका हाथ पकड़कर बोले, अरे शिवदास, क्या मुझे भूल गये ?

शिवदास अब अपने मनोवेगको रोक न सका; उसके नेत्र डब-डबा गये। कुंवरके गले लिपट गया और बोला, भूला तो नहीं, परन्तु आपके सामने आते हुए लज्जा आती है।

कुंवर—यहां दूधकी दूकान करते हो क्या ? मुझे मालूम ही न था, नहीं तो अठवारोंसे पानी पीते-पीते जुकाम क्यों होता, आओ इस मोटरपर बैठ जाओ। मेरे साथ होटलतक चलो। तुमसे बातें करनेको जी चाहता है। तुम्हें बरहल ले चलूंगा और एक बार फिर गुल्ली-डंडे खेलेंगे।

शिवदास—ऐसा न कीजिये नहीं तो देखनेवाले हंसेंगे। मैं होटलमें आ जाऊंगा। वहीं हज़रत-गंजवाले होटलमें ठहरे हैं न ?

कुंवर—अवश्य आओगे न ?

शिवदास—आप बुलायेंगे और मैं न आऊंगा ?

कुंवर—यहां कैसे बैठे हो। दूकान तो चल रही है न ?

शिवदास—आज सवेरे तक तो चलती थी। आगेका हाल नहीं मालूम ?

कुंवर—तुम्हारे रुपये भी बैंकमें जमा थे क्या ?

शिवदास—जब आऊंगा तो बताऊंगा ?

कुंवर साहब मोटरपर आ बैठे और ड्राइवरसे बोले, होटलकी ओर चलो।

ड्राइवर—हुजूरने ह्वाइटवे कम्पनीकी दूकानपर चलनेकी आज्ञा दी थी।

कुंवर—अब उधर न जाऊंगा।

ड्राइवर—जेकब साहब बारिस्टरके वहां भी न चलूं ?

कुंवर—(झुंझलाकर) नहीं, कहीं मत चलो। मुझे सीधे होटल पहुंचाओ।

निराशा और विपत्तिके इन दृश्योंने जगदीशसिंहके चित्तमें यह प्रश्न उपस्थित कर दिया था कि "अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ?"

६

आजसे सात वर्ष पूर्व जब बरहलके महाराजा ठीक युवावस्थामें घोड़ेसे गिरकर मर गये थे, विरासतका प्रश्न उठा तो महाराजाके

कोई सन्तान न होनेके कारण वंश-क्रम मिलानेसे उनके सगे चचेरे भाई ठाकुर रामसिंहको वरासतका हक़ पहुंचता था। उन्होंने दावा किया। लेकिन न्यायालयोंने रानीको हक़दार ठहराया। ठाकुर साहबने अपीलें कीं, प्रिवीकौंसिलतक गये, परन्तु सफलता न हुई। मुक़दमेबाज़ीमें लाखों रुपये नष्ट हुए, अपने पासकी मिलकियत भी हाथसे जाती रही किन्तु हारकर भी वह चैनसे नहीं बैठे। सदैव विधवा रानीको छेड़ते रहते। कभी असामियोंको भड़काते, कभी हाकिमोंसे रानीकी बुराई कराते, कभी उन्हें जाली मुक़दमोंमें फंसानेका उपाय करते। परन्तु रानी भी बड़े जीवटकी स्त्री थीं। वह ठाकुर साहबके प्रत्येक आघातका मुंहतोड़ उत्तर देतीं। हां, इस खींचतानमें इन्हें बड़ी-बड़ी रकमें व्यय करनी पड़तीं। असामियोंसे रुपये न वसूल होते। इसलिये उन्हें बारम्बार ऋण लेना पड़ता था। परन्तु क़ानूनके अनुसार उन्हें ऋण लेनेका अधिकार नहीं था। इसलिए उन्हें या तो इस व्यवस्थाको छिपाना पड़ता था, या सूदकी गहरी दर स्वीकार करनी पड़ती थी।

कुंवर जगदीश सिंहका लड़कपन तो लाड़-प्यारसे बीता था परन्तु जब ठाकुर रामसिंह मुक़दमे बाजियोंसे बहुत तंग आ गये और यह सन्देह होने लगा कि कहीं रानीकी चालोंसे कुंवर साहबका जीवन संकटमें न पड़ जाय तो उन्होंने विवश हो कुंवर साहबको देहरादून भेज दिया। कुंवर साहब वहां दो वर्षतक तो आनन्दसे रहे, किन्तु ज्योंही कालेजकी प्रथम श्रेणीमें पहुंचे ठाकुर साहब परलोकवासी हो गये। कुंवर साहबको शिक्षाक्रम छोड़ना पड़ा।

बरहल चले आये। सिरपर कुटुम्ब-पालन और रानीसे पुरानी शत्रुताके निभानेका बोझ आ पड़ा। उस समयसे महारानीके मृत्यु-कालतक उनकी दशा बहुत अवनत रही। ऋण या स्त्रियोंके गहनोंके सिवा और कोई आधार न था। उसपर कुल मर्यादा-रक्षाकी चिन्ता भी थी। यह तीन वर्ष उनके लिये कठिन परीक्षाका समय था। आये दिन साहूकारोंसे काम पड़ता था। उनके निर्दय वाणोंसे कलेजा छिद गया था, हाकिमोंके कठोर व्यवहार और अत्याचार भी सहने पड़ते। परन्तु सबसे हृदयविदारक अपने आत्मीयजनोंका बर्ताव था जो सामने घात न करके बगलो चोटें करते थे। मित्रता और ऐक्यकी आड़में कपट-का हाथ चलाते थे। इन कठोर यातनाओंने कुंवर साहबको अधिकार, स्वेच्छा और धन-सम्पत्तिका जानी दुश्मन बना दिया था। वह बड़े भावुक पुरुष थे। सम्बन्धियोंकी अकृपा और देश बन्धुओंकी दुर्नीति उनके हृदयपर काला चिह्न बनती जाती थीं। साहित्यप्रेमने उन्हें मानव प्रकृतिका तत्वान्वेषी बना दिया था और जहां यह ज्ञान उन्हें प्रतिदिन सभ्यतासे दूर लिये जाता था, वहां उनके चित्तमें जनसत्ता और साम्यवादके विचार पुष्ट करता जाता था। उनपर प्रकट हो गया था कि यदि सद्व्यवहार जीवित है तो वह झोंपड़ों और गरीबोंमें है। उस कठिन समयमें जब चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था, उन्हें कभी-कभी सच्ची सहानुभूतिका प्रकाश यहीं दृष्टिगोचर हो जाता था। धन-सम्पत्तिको वह श्रेष्ट प्रसाद नहीं ईश्वरीय प्रकोप समझते थे, जो मनुष्यके हृदयसे दया और प्रेमके भावोंको मिटा देती है, यह वह मेघ है जो चित्तके प्रकाशित तारोंपर छा जाता है।

परन्तु महारानीकी मृत्युके बाद ज्योंही धन-सम्पत्तिने उनपर वार किया, बस दार्शनिक तर्कोंकी यह ढाल चूर-चूर हो गयी। आत्म निदर्शनकी शक्ति नाश हो गयी। वे मित्र बन गये जो शत्रु सरीखे थे, और जो सच्चे हितैषी थे वे विस्मृत हो गये। साम्यवादके मनोगत विचारोंमें घोर परिवर्त्तन आरम्भ हो गया। हृदयमें सहिष्णुताका उद्भव हुआ। त्यागने भोगकी ओर सिर झुका दिया। मर्य्यादाकी बेड़ी गलेमें पड़ी। वे अधिकारी जिन्हें देखकर उनके तीवर बदल जाते थे, अब उनके सलाहकार बन गये। दीनता और दरिद्रताको जिसने उन्हें सच्ची सहानुभूति थी देखकर अब वह आंखें मींच लेते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि कुंवरसाहब अब भी साम्यवादके भक्त थे किन्तु उन विचारोंके प्रकट करनेमें वह पहलेकी भी स्वतन्त्रता न थी। विचार अब व्यवहारसे डरता था। कथनको कार्यरूपमें परिणत करनेका उन्हें अवसर प्राप्त था पर अब कार्यक्षेत्र उन्हें कठिनाइयोंसे घिरा हुआ जान पड़ता था। बेगारके वह जानी दुश्मन थे परन्तु अब बेगारको बन्द करना दुष्कर प्रतीत होता था। स्वच्छता और स्वास्थ्यरक्षाके वह भक्त थे किन्तु अब धनव्ययका ध्यान न करके भी उन्हें ग्रामवासियोंकी हो ओरसे विरोधकी शंका होती थी। असामियोंसे पोत उगाहनेमें कठोर बर्त्तावको वह पाप समझते थे मगर अब कठोरताके बिना काम चलता न जान पड़ता था। सारांश यह कि कितने ही सिद्धान्त जिनपर पहले उनकी श्रद्धा थी अब असंगत प्रतीत होते थे।

परन्तु आज जो दुःखजनक दृश्य बैंकके इहातेमें नजर आये उन्होंने उनके दयाभावको जागृत कर दिया। उस मनुष्यकी सी दशा हो गयी जो नौकामें बैठा सुरम्य तटकी शोभाका आनन्द उठाता हुआ किसी स्मशानके सामने आ जाय, चितापर लाशें जलती देखे, शोक सन्तप्तोंके करुणक्रन्दनको सुने और नावसे उतर-कर उनके दुःखमें सम्मिलित हो जाय।

रातके दस बज गये थे। कुंवर साहब पलंग पर लेटे हुए थे। बैंकके इहातेका दृश्य आंखोंके सामने नाच रहा था। वही विलाप ध्वनि कानोंमें आ रही थी। चित्तमें प्रश्न हो रहा था, क्या इस विडम्बनाका कारण मैं हूं? मैंने वही किया जिसका मुझे कानूनन अधिकार था। यह बैंकके संचालकोंकी भूल है कि, उन्होंने बिना पूरी जमानतके इतनी बड़ी रक़म कर्ज दे दी। लेनदारोंको उन्हींकी गरदन नापनी चाहिए। मैं कोई खुदाई फ़ौज़दार नहीं हूं कि दूसरोंकी नादानीका फल भोगूं। फिर विचार पलटा—मैं नाहक इस होटलमें ठहरा। चालीस रुपये प्रतिदिन देने पड़ेंगे। कोई चारसौ रुपयेके मत्थे जायगी। इतना सामान भी व्यर्थ ही लिया। क्या आवश्यकता थी? मखमली गद्दे की कुरसियोंसे, या शीशेके सामानोंकी सजावटसे मेरा गौरव नहीं बढ़ सकता। कोई साधारण मकान पांच रुपये किरायेपर ले लेता तो क्या काम न चलता? मैं और साथके सब आदमी आरामसे रहते। यही न होता, लोग निन्दा करते। इसकी क्या चिन्ता। जिन लोगोंके मत्थे यह ठाट कर रहा हूं, वह गरीब तो रोटियोंको तरसते हैं। यही दस बारह हज़ार

रुपये लगाकर कुयें बनवा देता तो सहस्रों दीनोंका भला होता। अब फिर लोगोंके चकमेमें न आऊंगा। यह मोटरकार व्यर्थ है। मेरा समय इतना महंगा नहीं है कि घण्टा आध घण्टाकी किफायतके लिए दो सौ रुपये महीनेका खर्च बढ़ा लूं। फ़ाका करनेवाले असामियोंके सामने मोटर दौड़ाना उनकी छातियोंपर मूंग दलना है। माना कि वह रोबमें आ जायंगे। जिधरसे निकल जाऊंगा सैकड़ों स्त्रियां और बच्चे देखनेके लिए खड़े हो जायंगे। मगर केवल इतने ही दिखावके लिए इतना खर्च बढ़ाना मूर्खता है। यदि दूसरे रईस ऐसा करते हैं तो करें, मैं उनकी बराबरी क्यों करूं। अबतक दो हज़ार रुपये सालानामें मेरा निर्वाह हो जाता था। अब दोके बदले चार हज़ार बहुत हैं और फिर मुझे दूसरोंकी कमाईको इस प्रकार उड़ानेका अधिकार ही क्या है? मैं कोई उद्योग धन्धा, कोई कारोबार, नहीं करता जिसका यह नफा हो। यदि मेरे पुरुषाओंने हठधर्मी और ज़बरदस्तीसे इलाक़ा अपने वशमें कर लिया तो मुझे उनके लूटके धनमें शरीक होनेका क्या अधिकार है? जो लोग परिश्रम करते हैं उन्हें अपने परिश्रमका पूरा फल मिलना चाहिए। राज्य उन्हें केवल दूसरोंके कठोर हाथोंसे बचाता है इस सेवाका उसे उचित मुआवजा मिलना चाहिये। बस मैं तो राज्यकी ओरसे यह मुआवज़ा वसूल करनेके लिए नियत हूं। इसके अतिरिक्त इन गरीबोंकी कमाईमें मेरा और कोई भाग नहीं है। यह बेचारे दीन हैं, मूर्ख हैं, बे ज़बान हैं। इस समय हम इन्हें चाहें जितना सता लें। इन्हें अपने स्वत्वका ज्ञान नहीं है। अपने महत्वको नहीं समझते। पर

एक समय अवश्य आयेगा, जब उनके मुंहमें भी ज़बान होगी, अपने अधिकारका ज्ञान होगा और तब हमारी दशा बुरी होगी। ये भोग-विलास मुझे अपने असामियोंसे दूर किये देते हैं। मेरी बड़ाई इसीमें है कि इन्हींमें रहूं, इन्हींकी भांति जीवन निर्वाह करूं और इनकी सहायता करूं।

हां, तो इस बैंकको क्या करूं। कोई छोटी-मोटी बात होती तो कहता लाओ जिस तरह सिरपर बहुतसे भार हैं उसी प्रकार सूदके अलग हुए, और फिर महाजनोंके भी तो तीन लाख रुपये अलग आते हैं। रियासतकी आमदनी डेढ़ दो लाख रुपया सालाना है अधिक है नहीं। मैं इतना बड़ा साहस करूं भी तो किस बिरतेपर। हां, यदि वैरागी हो जाऊं तो सम्भव है कि मेरे जीवनमें—यदि कहीं अचानक मृत्यु न हो जाय तो यह झगड़ा पाक हो जाय। इस अग्निमें कूदना अपने सम्पूर्ण जीवन, अपनी उमंगों और अपनी आशाओंको भस्म करना है। आह! इस दिनकी प्रतीक्षामें हमने क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे। पिताजीने इसी चिन्तामें प्राण त्याग किये। यह शुभ मुहूर्त, हमारी अन्धेरी रातके लिए दूरका दीपक था। हम इसीके आश्रय जीवित थे। सोते जागते सदैव इसीकी चर्चा रहती थी। इससे चित्तको कितना सन्तोष और कितना अभिमान था। उपवासके दिन भी हमारे तेवर मैले न होते थे। अब इतने धैर्य और असन्तोषके बाद अच्छे दिन आये तो उससे कैसे विमुख हुआ जाय? और फिर अपनी ही चिन्ता तो नहीं रियासतकी उन्नतिके कितनी ही स्कीमें सोच चुका हूं, क्या अपनी इच्छाओंके साथ उन विचारोंको भी त्याग दूं? इस अभागी रानीने

मुझे बुरी तरह फंसाया। जबतक जीती रही कभी चैनसे न बैठने दिया। मरी तो मेरे सिर यह बला डाल दी। परन्तु मैं दरिद्रतासे इतना डरता क्यों हूं? दरिद्रता कोई पाप नहीं है। यदि मेरा त्याग हजारों घरानोंको कष्ट और दुरवस्थासे बचाये तो मुझे उससे मुंह न मोड़ना चाहिए। केवल सुखसे जीवन व्यतीत करना ही हमारा ध्येय नहीं है? हमारी मान, प्रतिष्ठा और कीर्त्ति सुखभोग ही से तो नहीं हुआ करती। राज-मन्दिरोंमें रहनेवाले और विलासमें रत राना प्रतापको कौन जानता है? यह उनका आत्म समर्पण और कठिनव्रत पालन ही है जिसने उन्हें हमारी जातिका सूर्य्य बना दिया है। श्रीरामचन्द्रने यदि अपना जीवन सुख-भोगमें बिताया होता तो आज हम उनका नाम भी न जानते। उनके आत्मबलिदानने ही उन्हें अमर बना दिया है। हमारी प्रतिष्ठा धन और विलासपर अवलम्बित नहीं है। मैं मोटरपर सवार हुआ तो क्या और टट्टूपर चढ़ा तो क्या। होटलमें ठहरा तो क्या और किसी मामूली घरमें ठहरा तो क्या। बहुत होगा तो ताल्लुकेदार लोग मेरी हंसी उड़ायेंगे इसकी परवा नहीं। मैं तो हृदयसे चाहता हूं कि उन लोगोंसे अलग-अलग रहूं। यदि इतने ही निन्दासे सैकड़ों परिवारोंका भला हो जाय तो मैं मनुष्य नहीं जो प्रसन्नतासे उसे सहन न करूं। यदि अपने घोड़े और फिटन, सैर और शिकार, नौकर-चाकर और स्वार्थ-साधक हितमित्रोंसे रहित होकर मैं सहस्रों अमीर ग़रीब कुटुम्बोंका, विधवाओं और अनाथोंका, भला कर सकूं तो मुझे इसमें कदापि विलम्ब न करना चाहिए। सहस्रों परिवारोंके भाग्य इस समय मेरी मुट्ठीमें हैं। मेरा सुख-भोग उनके लिए विष और

मेरा आत्मसंयम उनके लिए अमृत है। मैं अमृत बन सकता हूं तो विष क्यों बनूं? और फिर इसे आत्म-त्याग समझना भी मेरी भूल है। यह एक संयोग है कि मैं आज इस जायदादका अधिकारी हूं। मैंने उसे कमाया नहीं। इसके लिए रक्त नहीं बहाया, पसीना नहीं बहाया। यदि यह जायदाद मुझे न मिली होती तो मैं सहस्रों दीन भाइयोंकी भांति आज जीविकोपार्जनमें लगा रहता। मैं क्यों न भूल जाऊं कि मैं इस राज्यका स्वामी हूं। ऐसे ही अवसरोंपर मनुष्यकी परख होती है। मैंने वर्षों पुस्तकावलोकन किया, वर्षों परोपकार-सिद्धान्तका अनुयायी रहा। यदि इस समयमें उन सिद्धान्तोंको भूल जाऊं और स्वार्थको मनुष्यता और सदाचारसे बढ़ने दो दूं। वस्तुतः यह मेरी अत्यन्त कायरता और स्वार्थपरता होगी। भला स्वार्थ-साधनकी शिक्षाके लिए गीता, मिल, एमर्सन और अरस्तूका शिष्य बननेकी क्या आवश्यकता थी? यह पाठ तो मुझे अपने दूसरे भाइयोंसे योंही मिल जाता। प्रचलित-प्रथासे बढ़कर और कौन गुरु था। साधारण लोगोंकी भांति क्या मैं भी स्वार्थके सामने सिर झुका दूं, तो फिर विशेषता क्या रही। नहीं मैं कानशंस (विवेकबुद्धि) का खून न करूंगा। जहां पुण्यकर सकता हूं पाप न करूंगा। परमात्मन्! तुम मेरी सहायता करो, तुमने मुझे राजपूतके घर जन्म दिया है। मेरे कमसे इस महान् जातिको लज्जित न करो। नहीं, कदापि नहीं। यह गरदन स्वार्थके सम्मुख न झुकेगी। मैं राम, भीष्म और प्रतापका वंशज हूं। शरीर-सेवक न बनूंगा।

कुंवर जगदीश सिंहको इस समय ऐसा ज्ञान हुआ मानों वह किसी ऊंचे मीनारपर चढ़ गये हैं। चित्त अभिमानसे पूरित हो गया। आंखें प्रकाशमान हो गयीं। परन्तु एक ही क्षणमें इस उमङ्गका उतार होने लगा। ऊंचे मीनारसे नीचेकी ओर आंखें गयीं, सारा शरीर कांप उठा। उस मनुष्यकीसी दशा हो गयी जो किसी नदीके तटपर बैठा हुआ उसमें कूदनेका विचार कर रहा हो।

उन्होंने सोचा, क्या मेरे घरके लोग मुझसे सहमत होंगे? यदि मेरे कारण वह सहमत हो जायं तो क्या मुझे अधिकार है कि अपने साथ उनकी इच्छाओंका भी बलिदान करूं? और तो और माता जी कभी न मानेंगी और कदाचित् भाई लोग भी अस्वीकार करें। रियासतकी हैसियतके देखते हुए वह कमसे कम दस हज़ार सालानाके भागी हैं, और उनके भागमें मैं किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मैं केवल अपना मालिक हूं। परन्तु मैं भी तो अकेला नहीं हूं। सावित्री स्वयं चाहे मेरे साथ आगमें कूदनेको तैयार हो, किन्तु अपने प्यारे राजपुत्रको इस आंचके समीप कदापि न आने देगी।

कुंवर महाशय और अधिक न सोच सके। वह एक विकल-दशामें पलंगपरसे उठ बैठे और कमरेमें टहलने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने जंगलसे बाहरकी ओर झांक और किवाड़ खोलकर बाहर चले आये। चारों ओर अन्धेरा था, उनकी चिन्ताओंकी भांति अपार और भयकारी सामने गोमती नदी बहती थी। वह धीरे-धीरे नदीके तटपर चले गये और देरतक वहीं टहलते

रहे। आकुल हृदयको जल तरङ्गोंसे प्रेम होता है शायद इसलिए कि लहरें भी व्याकुल हैं। उन्होंने अपने चंचल चित्तको फिर एकाग्र किया। यदि रियासतकी आमदनीसे यह सब वृत्तियां दी जायंगी तो ऋणका सूद निकलना भी कठिन होगा। मूल का क्या कहना है। क्या आयमें बढ़ती नहीं हो सकती? अभी अस्तबलमें बीस घोड़े हैं, मेरे लिए एक बस है। नौकरोंकी संख्या सौसे कम नहीं होगी। मेरे लिए दो भी अधिक हैं। यह अनुचित है कि अपने ही भाइयोंसे नीच सेवाएं करायी जायं। उन मनुष्योंको मैं अपने सीरकी जमीन दे दूंगा, सुखसे खेती करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे। बागीचोंके फल अबतक डालियोंके भेंट हो जाते थे। अब उन्हें बेचूंगा और सबसे बड़ी आमदनी तो बयाईकी है। केवल महेशगंजके बाज़ारसे दस हजार रुपये आते हैं। यह सब आमदनी महन्तजी उड़ा जाते हैं। उनके लिए एक हजार रुपये साल बहुत होने चाहिए। अबकी इस बाज़ारका ठीका करूंगा। आठ हजार से कम न मिलेंगे। इन मदोंसे २५ हज़ार वार्षिक आय होगी, सावित्री और लल्ला (लड़का) के लिए एक हज़ार रुपया माहवार काफ़ी हैं। मैं सावित्रीसे स्पष्ट कह दूंगा कि या तो एक हज़ार रुपया मासिक लो और मेरे साथ रहो या रियासतकी आधी आमदनी ले लो और मुझे छोड़ दो। रानी बननेकी इच्छा हो तो खुशी से बनो, परन्तु मैं राजा न बनूंगा।

अचानक कुंवर साहबके कानोंमें आवाज़ आई "रामनाम सत्य है।" उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। कई मनुष्य एक लाश लिए आते थे। उन लोगों ने नदी तीर चिता सजायी और आग लगा दी। दो

स्त्रियाँ चिग्घारकर रो रही थीं। इस विलाप का कुंवर साहबके चित्त-पर कुछ प्रभाव न पड़ा। वह चित्तमें लज्जित हो रहे थे कि मैं कितना पाषाण-हृदय हूं। एक दीन मनुष्यकी लाश जल रही है। स्त्रियाँ रो रही हैं और मेरा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता। पत्थरकी मूर्तिकी भांति खड़ा हूं! एकबारगी एक स्त्रीने रोते हुए कहा "हाय मेरे राजा! तुम्हें विष कैसे मीठा लगा?" यह हृदय-विदारक विलाप सुनते ही कुंवर साहबके चित्तमें एक घाव-सा लग गया। करुणा सजग हो गयी और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। कदाचित् इस दुखियाने विष-पान करके प्राण दिये हैं। हाय उसे विष कैसे मीठा लगा! इसमें कितनी करुणा है, कितना दुःख, कितना आश्चर्य! विष तो कड़आ पदार्थ है। वह क्योंकर मीठा हो गया। कटुविषके बदले जिसने अपने मधुर प्राण दे दिये, उसपर कोई बड़ी मुसीबत पड़ी होग । ऐसी ही दशामें विष मधुर हो सकता है। कुंवर साहब तड़प गये। कारुणिक शब्द बार बार उनके हृदयमें गूंजते थे। अब उनसे वहाँ न खड़ा रहा गया। वह उन आदमियोंके पास आये, और एक मनुष्यसे पूछा "क्या बहुत दिनोंसे बीमार थे?" इस मनुष्यने कुंवर साहबकी ओर आंसू भरे नेत्रोंसे देखकर कहा, नहीं साहब, कहांकी बीमारी, अभी आज सन्ध्यातक भली-भांति बातें कर रहे थे। मालूम नहीं संध्याको क्या खा लिया कि खूनकी कै होने लगी। जबतक वैद्यराजके यहां जांय, तबतक आंखें उलट गयीं। नाड़ी छूट गयी। वैद्यराजने आकर देखा तो कहा, अब क्या हो सकता है? अभी कुल बाईस तेईस वर्ष की अवस्था थी। ऐसा पट्ठा सारे लखनऊमें नहीं था।

कुंवर—कुछ मालूम हुआ विष क्यों खाया !

उस मनुष्यने सन्देह दृष्टिसे देखकर कहा, महाशय, और तो कोई बात नहीं हुई। जबसे यह बड़ा बैंक टूटा है बहुत उदास रहते थे। कई हजार रुपये बैंकमें जमा किये थे। घी, दूध मलाईकी बड़ी दूकान थी। बिरादरीमें मान था। वह सारी पूंजी डूब गयी। हमलोग रोकते रहे कि बैंकमें रुपया मत जमा करो, किन्तु होनहार तो यह थी किसीकी नहीं सुनी। आज सवेरेको खीसे गहने मांगते थे कि बन्धक रखकर अहीरोंको दूधका दाम दे दें। उससे बातों-बातोंमें झगड़ा हो गया। बस न जाने क्या खा लिया।

कुंवर साहबका हृदय कांप उठा, तुरन्त ध्यान आया, शिवदास तो नहीं है। पूछा, इनका नाम शिवदास तो नहीं था ? उस मनुष्यने विस्मयसे देखकर कहा, हां यही नाम था, क्या आपसे जान पहचान थी ?

कुंवर—हां, हम और वह बहुत दिनोंतक बरहलमें साथ-साथ खेले थे। आज शामको वह हमसे बैंकमें मिले थे। यदि उन्होंने मुझसे तनिक भी चर्चा की होती, तो मैं यथा-शक्ति उनकी सहायता करता—शोक !

उस मनुष्यने अब ध्यानपूर्वक कुंवर साहबको देखा, और जाकर स्त्रियोंसे कहा, चुप हो जाओ, बरहलके महाराजा आये हैं। इतना सुनते ही शिवदासकी माताने जोर-जोरसे सिर पीटा और रोती हुई आकर कुंवरके पैरोंपर गिर पड़ी। उसके मुखसे केवल यह शब्द

निकले,—"बेटा, बचपनमें जिसे तुम भैया कहा करते थे........."
और गला फंस गया।

कुंवर महाशयकी आंखोंसे भी अश्रुपात हो रहा था। शिव-दासकी मूर्त्ति उनके सामने खड़ी यह कहती हुई दीख पड़ती थी, तुमने मित्र होकर मेरे प्राण लिये!

७

भोर हो गया। परन्तु कुंवर साहबको नींद नहीं आयी। जबसे वह गोमती तीरसे लौटे थे उनके चित्तपर एक वैराग्य सा छाया हुआ था। वह कारुणिक दृश्य, उनके स्वार्थ तर्कोंको छिन्न-भिन्न किये देता था। सावित्रीके विरोध, लल्लाके निराशायुत हठ, और माताके कुछ शब्दोंका अब उन्हें लेशमात्र भी भय न था। सावित्री कुढ़ेगी, कुढ़े। लल्लाको भी संग्रामके क्षेत्रमें कूदना पड़ेगा, कोई चिन्ता नहीं। माता प्राण देनेपर तत्पर होगी, क्या हर्ज है। मैं अपनी स्त्री-पुत्र तथा हितमित्रादिके लिए सहस्रों परिवारोंकी हत्या न करूंगा। हाय! शिवदासको जीवित रखनेके लिए मैं ऐसी कितनी रियासतें छोड़ सकता हूं। सावित्रीको भूखों रहना पड़े, लल्लाको मजदूरी करनी पड़े, मुझे द्वार-द्वार भीख मांगनी पड़े तब भी दूसरोंका गला न दबाऊंगा। अब विलम्बका अवसर नहीं है न जाने आगे यह दीवाला और क्या क्या आपत्तियां खड़ी करे। मुझे इतना आगा पीछा क्यों हो रहा है। यह केवल आत्म निर्बलता है। वरना यह कोई ऐसा बड़ा काम नहीं जो किसीने न किया हो। आये दिन लोग लाखों रुपये दानपुण्य करते हैं। मुझे अपने कर्त्तव्यका ज्ञान है।

उससे क्यों मुंह मोड़ूं जो कुछ हो, चाहे सिरपर जो पड़े। इसकी क्या चिन्ता (घंटी बजायी) एक क्षणमें अरदली आंखें मलता हुआ आया।

कुंवर साहब बोले, अभी जेकब साहब बारिस्टरके पास जाकर मेरा सलाम दो। जाग गये होंगे। कहना जरूरी काम है। नहीं यह पत्र लेते जाओ। मोटर तैयार करा लो!

८

मिस्टर जेकबने कुंवर साहबको बहुत समझाया कि आप इस दलदलमें न फंसें नहीं तो निकलना कठिन होगा। मालूम नहीं अभी कितनी ऐसी रकमें हैं, जिनका आपको पता नहीं है। परन्तु चित्तमें दृढ़ हो जानेवाला निश्चय चूनेका फ़र्श है, जिसको आपत्तिके थपेड़े और भी पुष्ट कर देते हैं। कुंवर साहब अपने निश्चयपर दृढ़ रहे। दूसरे दिन समाचारपत्रोंमें छपवा दिया कि मृतक महारानीपर जितना कर्ज है वह हम सकारते हैं। और नियत समयके भीतर चुका देंगे।

इस विज्ञापनके छपते ही लखनऊमें खलबली पड़ गयी। बुद्धिमानोंकी सम्मतिमें यह कुंवर महाशयकी नितान्त भूल थी, और जो लोग क़ानूनसे अनभिज्ञ थे उन्होंने सोचा कि इसमें अवश्य कोई भेद है। ऐसे बहुत कम मनुष्य थे जिन्हें कुंवर साहबकी नीयतकी सचाईपर विश्वास आया हो। परन्तु कुंवर साहबका बखान चाहे न हुआ हो, आशीर्वादकी कमी न थी। बैंकके हजारों गरीब लेनदार सच्चे हृदयसे उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे।

एक सप्ताहतक कुंवर साहबको सिर उठानेका अवकाश न मिला। मिस्टर जेकबका विचार सत्य हुआ। देनी प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। कितने ही नोट ऐसे मिले जिनका उन्हें कुछ भी पता न था। जौहरियों और अन्य बड़े-बड़े दूकानदारोंका लेना भी कम न था। अनुमान तेरह चौदह लाख का था। मीज़ान बीस लाखतक जा पहुंचा। कुंवर साहब घबराये। शङ्का हुई, ऐसा न हो कि मुझे भाइयोंका गुजारा भी बन्द करना पड़े, जिसका उन्हें कोई अधिकार नहीं था। यहांतक कि सातवें दिन उन्होंने कई साहूकारोंको बुरा भला कहकर सामनेसे दूर किया। जहां व्याजदर अधिक थी उसे कम कराया और जिन रकमोंकी मोयाद बीत चुकी थी उन्हें नकार दिया।

उन्हें साहूकारोंकी कठोरतापर क्रोध आता था। उनके विचारमें महाजनोंको डूबते धनका एक भाग पाकर ही सन्तोष कर लेना चाहिए था। इतनी खींचातानी करनेपर भी कुल देनी उन्नीस लाखसे कम न हुई।

कुंवर साहब इन कामोंसे अवकाश पाकर एक दिन नेशनल बैङ्ककी ओर जा निकले। बैङ्क खुला हुआ था। मृतक शरीरमें प्राण आ गये थे! लेनदारोंकी भीड़ लगी हुई थी। लोग प्रसन्न-चित्त लौटे जा रहे थे। कुंवर साहबको देखते ही सैकड़ों मनुष्य बड़े प्रेमसे उनकी ओर दौड़, किसीने रोकर, किसीने पैरोंपर गिरकर और किसीने सभ्यतापूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वे बैङ्कके कार्य-कर्ताओंसे भी मिले। लोगोंने कहा, इस विज्ञापनने बैङ्कको जीवित

कर दिया। बंगाली बाबूने लाला साईंदासकी आलोचना की—"वह समझता था संसारमें सब मनुष्य भलामानुष है। हमको उपदेश करता था। अब उसका आंख खुल गया है! अकेला घरमें बैठा रहता है। किसीको मुंह नहीं देखता। हम सुनता है वह यहांसे भाग जाना चाहता था। परन्तु बड़ा साहब बोला, तुम भागेगा तो तुम्हारा ऊपर वारण्ट जारी कर देगा।"

अब साईंदासकी जगह बंगाली बाबू मैनेजर हो गये थे।

इसके बाद कुंवर साहब बरहल आये। भाइयोंने यह वृत्तान्त सुना तो बिगड़े, अदालतकी धमकी दी। माताजीको ऐसा धक्का पहुंचा कि वह उसी दिन बीमार हो गयीं और एक ही सप्ताहमें इस संसारसे विदा हो गयीं। सावित्रीको भी चोट लगी, पर उसने केवल सन्तोष ही नहीं किया, पतिकी उदारता और त्यागकी प्रशंसा की। रह गये लाल साहब। उन्होंने जब देखा कि अस्तबलसे घोड़े निकले जाते हैं, हाथी मकनपुरके मेलेमें बिकनेके लिये भेज दिये गये हैं। कहार विदा किये जा रहे हैं तो व्याकुल हो पितासे बोले, बाबूजी! यह सब नौकर, घोड़े, हाथी कहां जा रहे हैं?

कुंवर—एक राजा साहबके उत्सवमें।

लालजी—कौनसे राजा?

कुंवर—उनका नाम राजा दीन सिंह है।

लालजी—कहां रहते हैं?

कुंवर—दरिद्रपुर।

लालजी—तो हम भी जायंगे।

कुंवर—तुम्हें भी ले चलेंगे, परन्तु इस बारातमें पैदल चलनेवालोंका सम्मान सवारोंसे अधिक होगा।

लालजी—तो हम भी पैदल चलेंगे।

कुंवर—वहां परिश्रमी मनुष्यकी प्रशंसा होती है।

लालजी—तो हम सबसे ज्यादा परिश्रम करेंगे।

कुंवर साहबके दोनों भाई पांच-पांच हज़ार रुपयेका गुज़ारा लेकर अलग हो गये। कुंवर साहब अपने और अपने परिवारके लिए कठिनाईसे एक हज़ार सालानाका प्रबन्ध कर सके, परन्तु यह आमदनी एक रईसके लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं है। अतिथि अभ्यागत प्रतिदिन टिके ही रहते हैं। उन सबका भी सत्कार करना पड़ता है। बड़ी कठिनाईसे निर्वाह होता है। इधर एक वर्षसे शिवदासके कुटुम्बका भार भी सिरपर आ पड़ा है। परन्तु कुंवर साहब कभी अपने निश्चयपर शोक नहीं करते। उन्हें कभी किसीने चिन्तित नहीं देखा। उनका मुखमण्डल धैर्य्य और सच्चे अभिमानसे सदैव प्रकाशित रहता है। साहित्य प्रेम पहलेसे था। अब बाग़बानीसे प्रेम हो गया है। अपने बाग़में प्रातःकालसे शामतक पौदोंकी देख-रेख किया करते हैं और लालसाहब तो पक्के कृषक होते दिखाई देते हैं। अभी नौ दस वर्षसे अधिक अवस्था नहीं है, लेकिन अन्धेरे मुंह खेतोंमें पहुंच जाते हैं। खाने पीनेकी भी सुध नहीं रहती।

८

उनका घोड़ा मौजूद है। परन्तु महीनों उसपर नहीं चढ़ते।

उनकी यह धुन देखकर कुंवर साहब बहुत प्रसन्न रहते हैं और कहा करते हैं, मैं रियासतके भविष्यकी ओरसे निश्चिन्त हूं। लालसाहब कभी इस पाठको न भूलेंगे। घरमें सम्पत्ति होती तो सुख-भोग, आखेट और दुराचारके सिवा और क्या सूझता। सम्पत्ति बेंचकर हमने परिश्रम और सन्तोष खरीदा और यह सौदा बुरा नहीं। सावित्री इतनी सन्तोषी नहीं। वह कुंवरसाहबके रोकनेपर भी असामियोंसे छोटी मोटी भेंट ले लिया करती है और कुल-प्रथा नहीं तोड़ना चाहती।

लाल फीता

मैजिस्ट्रेटका इस्तीफा

१

विद्यापर जातिविशेष या कुलका एकाधिपत्य नहीं होता। बाबू हरिबिलास जातिके कुरमी थे। घर खेतबारी होती थी। पर उन्हें बचपन हीसे विद्याभ्यासका व्यसन था। यह विद्याप्रेम देखकर उनके पिता रामबिलास महतोने बड़ी बुद्धिमत्तासे काम लिया। उन्हें हलमें न जोता। आप मोटा खाते थे, मोटा पहनते थे और मोटा काम करते थे लेकिन हरिबिलासको कोई कष्ट न होने देते थे। वह पुत्रको रामायण पढ़ते देखकर खुशीसे फूले न समाते थे। जब गांवके लोग उसके पास अपने सम्मन या चिट्ठियां पढ़वाने आते तो गर्वसे महतोका सिर ऊंचा हो जाता था। बेटेके पास होनेकी खुशी और फेल होनेका रंज उन्हें बेटेसे भी अधिक होता था। और उसके इनामोंको देखकर तो वह मानों स्वर्गमें पहुंच जाते थे। हरिबिलासका उत्साह इन प्रेरणाओंसे और भी बढ़ता था, यहांतक कि शनैः शनैः मैट्रिकुलेशनकी परीक्षामें पास हो गये। रामबिलासने समझा था अब फ़स्ल काटनेके दिन आये। लेकिन

जब मालूम हुआ कि यह विद्याका अन्त नहीं बल्कि वास्तवमें आरम्भ है तो उनका जोश ठंडा पड़ गया। किन्तु हरिविलासका अनुराग अब कठिनाइयोंको ध्यानमें न लाता था। उस दृढ़ संकल्पके साथ जो बहुधा दरिद्र पर चतुर युवकोंमें पाया जाता है वह कालेज-में दाखिल हो गया। रामबिलास हारकर चुप हो गये। वह दिनोंदिन अशक्त होते जाते थे और खेती परिश्रमका दूसरा नाम है। कभी समयपर सिंचाई न कर सकते, कभी समयपर जुताई न हो सकती। उपज कम हो जाती थी। पर इस दुरवस्थामें भी वह हरिविलासकी पढ़ाईके ख़र्चका प्रबन्ध करते रहते थे। धीरे-धीरे उनकी सारी ज़मीन रेहन हो गयी। यहांतक कि जब हरिविलास एम० ए० पास हुए तो एक अंगुल भूमि भी न बची थी। सौभाग्यसे उनका नम्बर विद्यालयमें सबसे ऊंचा था। अतएव उन्हें डिप्टी मैजिस्ट्रेटीका पद मिल गया। रामबिलासने यह समाचार सुना तो पागलोंकी भांति दौड़ा हुआ ठाकुर द्वारेमें गया और ठाकुरजीके पैरोंपर गिर पड़ा। उसे स्वप्नमें भी ऐसी आशा न थी।

२

बाबू हरिविलास विद्वान ही न थे, सच्चरित्र भी थे। बड़े निर्भीक, स्पष्टवादी, दयालु और गम्भीर। न्यायपर उनकी अटल भक्ति थी। न्यायपथसे पगपर भी न टलते थे। प्रजा उनसे दबती थी पर उन्हें प्यार करती थी। अधिकारीवर्ग उनका सम्मान करते थ, पर मनमें उनसे शङ्कित रहते थे।

उन्होंने नीतिशास्त्रका खूब अध्ययन किया था। उन्हें इस

शास्त्रसे बहुत प्रेम था। वह क़ानूनको ही अपना अफ़सर समझते थे। वह अफ़सरोंको खुश रखना चाहते थे लेकिन जब उनका हुक्म क़ानूनके विरुद्ध होता तो वह उसे न मानते थे।

उन्हें नौकरी करते पांच साल हो चुके थे। अलीगढ़में तैनात थे। ठाकुर दलजीत सिंहके घर डाका पड़ा। पुलिसको आसामियों-पर सन्देह हुआ। कई गांवके आसामी पकड़े गये, गवाहियां बनायी गयीं और असामियोंपर मुकदमा चलने लगा। बेचारे किसान निरपराध थे। चारों ओर कोहराम मच गया। कितने ही किसान जिलाधीशके पास जाकर रोये। जिलाधीश ठाकुर साहबके मित्र थे, सालमें दो चार दावतें खाते, उनके हलक़ेमें शिकार खेलते, उनकी मोटर और फिटनपर सवार होते थे। असामियोंकी गुस्ताख़ीपर बिगड़ गये। उन्हें डांट डपटकर दुत्कार दिया। ज्वाला और भी दहकी। साहबने बाबू हरिविलासको बंगलेपर बुलाकर ताकीद की कि मुलाज़िमोंकी सज़ा अवश्य करना, नहीं तो ज़िलेमें बलवा हो जायगा। किन्तु हरिविलासको जब मालूम हुआ कि गवाह बनाये हुए हैं और ज्यादती ठाकुर साहबकी ही है तो उन्होंने मुल्ज़िमोंको बरी कर दिया। हाकिम ज़िलाने यह फैसला सुना तो जामेसे बाहर हो गये। हरिविलासको रिपोर्ट की। बदली हो गयी।

दूसरी बार फिर नीच जातिवालोंके साथ न्याय करनेका उन्हें ऐसा ही फल मिला। लखनऊमें थे, वहाँ देहाती मदरसोंमें नीच जातियोंके लड़के दाख़िल न होने पाते थे। कुछ तो अध्यापकोंका विरोध था, उनसे ज्यादा गांवके लोगोंका। हरिविलास दौरेपर गये

और यह शिकायत सुनी तो कई अध्यापकोंकी तम्बीह की, कई आदमियोंपर जुर्माना किया। जमींदारोंने यह देखा तो उनसे द्वेष करने लगे। गुमनाम चिट्ठियां, झूठो शिकायतोंसे भरी हुई हाकिमों-के पास पहुंचने लगीं। तहसीलदारोंने जमींदारोंको और भी उसकाया। एक कुरमीका इतने ऊंचे पदपर पहुंचना सभीको खट-कता था। नतीजा यह हुआ कि लोगोंने अपने लड़के मदरसेसे उठा लिये, कई मदरसे बन्द हो गये। हरिबिलासकी खासी बदनामी हो गयी। हाकिम जिलाने उन्हें वहां रखना उचित न समझा। उनकी बदली कर दी। एक दरजा भी घट गया।

इन अन्यायोंके होते हुए भी बाबू हरिबिलासका-सा कर्त्तव्य-शील अफसर सारे प्रान्तमें न था। उन्हें विश्वास था कि मेरे स्थानीय अफसर कितने ही पक्षपाती हों, उनकी नीति कितनी ही संकुचित हो, पर देशका शासन सत्य और न्यायपर ही स्थित है। अंग्रेजी राज्यकी वह सदैव स्तुति किया करते थे। यह इसी शासन-कालकी उदारता थी कि उन्हें ऐसा ऊंचा पद मिला था, नहीं तो उनके लिए यह अवसर कहां थे? दीनों और असहायोंकी इतनी रक्षा किसने की? शिक्षाकी इतनी उन्नति कब हुई? व्यापारका इतना प्रसार कब हुआ? राष्ट्रीय भावोंकी ऐसी जागृति कहां थी? वह जानते थे कि इस राज्यमें भी कुछ न कुछ बुराइयां अवश्य हैं। मानवी संस्थायें कभी दोषरहित नहीं हो सकतीं; लेकिन बुराइयोंसे भलाइयोंका पल्ला कहीं भारी है। यही विचार थे जिनसे प्रेरित होकर यूरोपीय महासमरमें हरिबिलासने सरकारकी खैरख्वाहीमें

कोई बात उठा नहीं रक्खो, हजारों रंगरूट भरती कराये, लाखों रुपये क़र्ज़ दिलवाये और महीनों घूम-घूमकर लोगोंको उत्तेजित करते रहे। इसके उपलक्ष्यमें उन्हें राय बहादुरीकी पदवी मिल गयी।

३

जाड़ेके दिन थे। डिप्टी हरिबिलास बालबच्चोंके साथ दौरेपर थे। बड़े दिनकी तातील हो गई थी इसीलिए तीनों लड़के भी आये हुए थे। बड़ा—शिवबिलास लाहौरके मेडिकल कालेजमें पढ़ता था। मंझला-संतबिलास इलाहाबादमें कानून पढ़ता था और छोटा श्रीबिलास लखनऊके ही एक स्कूलका विद्यार्थी था। शाम हो रही थी। डिप्टी साहब अपने तम्बूके सामने एक पेड़के नीचे कुरसीपर बैठे हुये थे। इलाकेके कई ज़मींदार भी मौजूद थे।

एक मुसलमान महाशयने कहा, हजूर आजकल तालमें चिड़ियां खूब हैं। शिकार खेलनेका अच्छा मौक़ा है।

दूसरे महाशय बोले, हुजूर जिस दिन चलनेको कहें, बेगार ठीक कर लिये जायं। दो तीन डोंगियां भी जमा कर ली जायं।

शिवबिलास—क्या अभीतक आप लोग बेगार लेते ही जाते हैं?

"जी हां इसके बग़ैर काम कैसे चलेगा। मगर हां अब मार-पीट बहुत करनी पड़ती है।"

एक ठाकुर साहब बोले, जबसे गांवके मनई बसरामें मजूर होके गये तबसे कोऊका मिजाजै नहीं मिलत। बात तक तो सुनत नहीं हैं। ई लड़ाई हमका मटियामेट कै दिहेस।

शिवबिलास—आपलोग मजूरी भी तो बहुत कम देते हैं।

ठाकुर—हजूर पहले दिनभरे के दुइ पैसा देत रहेन, अब तो चार देइत है तौनों पर कोऊ बिना मार गारी खाये बात नहीं सुनत है।

शिवबिलास—खूब? चार पैसे तो आप मजदूरी देते हैं और चाहते हैं कि आदमियोंको गुलाम बना लें। शहरोंमें कोई मजदूर ।।) से कममें नहीं मिल सकता।

मुसलमान महाशयने कहा, हजूर बजा फरमाते हैं। चार पैसेमें तो एक वक्तकी रोटियां भी नहीं चल सकतीं। मगर यहांकी रियाआ सख्तीकी ऐसी आदी हो गई है कि हम चाहें ।।) ही क्यों न दें पर बिला सख्ती किये मुख़ातिब ही नहीं होती। हां यह तो बतलाइये हजूर यह आजकल क्या हवा फिर गई है कि जहां देखिये वहीं मदरसे बन्द होते जाते हैं। सुनता हूं बड़े-बड़े कालिज भी टूट रहे हैं। इससे तो तालीमका बड़ा नुकसान होगा।

बाबू हरिबिलासको मालूम था कि शिवबिलास इसका क्या जवाब देगा। उसके राजनैतिक विचारोंसे परिचित थे। दोनों आदमियोंमें प्रायः इस विषयपर वाद-विवाद होता रहता था। लेकिन वह न चाहते थे कि इन जमींदारोंके सामने वह अपने स्वाधीन विचार प्रगट करें। शिवबिलासको बोलनेका अवसर न देकर आपही बोले, मैं तो इसे पागलपन समझता हूं, निरा पागलपन। यह लोग समझते हैं कि इन कार्रवाइयोंसे वह हमारी सरकारको परास्त कर देंगे। कुछ लोग देहातोंमें पंचायतें भी बनाते फिरते हैं। इसका मतलब भी यही है कि सरकारी अदालतोंकी जड़ खोदी

जायं; लेकिन कोई इन भलेमानसोंसे पूछे कि क्या क़ानूनकी गुत्थियां इन देहातियोंके सुलझाये सुलझ जायंगी। जिस क़ानूनके पढ़ने और समझनेमें उमरें गुजर जाती हैं उसका व्यवहार यह हलजुत्ते क्या खाकर करेंगे। शासनकी बुनियाद परम्परासे सत्य और न्यायपर स्थित रही है और जबतक शासकलोग इस मूल-तत्त्वको भूल न जायं राज्यकी अवनति नहीं हो सकती। हमारी सरकारने सदैव इस आदर्शको अपने सामने रक्खा है। प्रत्येक जातिको, प्रत्येक व्यक्तिको उस रेखातक कर्म और वचनकी पूर्ण स्वाधीनता दे दी है कि जहांतक उससे दूसरोंको कोई हानि न हो। यही न्यायप्रियता हमारी सरकारको अमर बनाये हुए है। जोर दिया जा रहा है कि लोग सरकारी नौकरियां छोड़ दें। इस उद्देशका पूरा होना और भी कठिन है। मैं यह मानता हूं कि कर्मचारी लोग बड़ी संख्यामें इस नीतिपर चलें तो सरकारके काममें बाधा पड़ सकती है लेकिन ऐसा होना असंभव सा जान पड़ता है। कर्म-चारियोंमें अच्छे और बुरे दोनों ही हैं। जो बुरे हैं वह नौकरी कभो न छोड़ेंगे इसलिए कि बेईमानी और रिश्वतके ऐसे अवसर और कहीं नहीं मिल सकते। जो अच्छे हैं उनके लिए भी यहां जातिसेवा और उपकारका बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। उन्हें किसीपर अन्याय करनेके लिए मजबूर नहीं किया जाता। सरकार किसी गुप्त और प्रजाघातक नीतिका व्यवहार नहीं करती। ऐसी दशामें यह लोग भी पृथक नहीं हो सकते। नौकरीको गुलामी कह-कर उसकी निन्दा की जाती है। लेकिन मैं उस वक़्ततक इसे गुलामी

नहीं समझ सकता जबतक हमें अपने धर्म और आत्माके विरुद्ध चलनेपर विवश न किया जाय। जमींदारोंने यह बातें बड़े ध्यानसे सुनीं। ऐसा जान पड़ता था कि इस विषयमें सबके सब बाबू हरिविलाससे सहमत हैं। हां, शिवबिलास इन युक्तियोंका प्रतिवाद करनेके लिए अधीर हो रहे थे पर इतने आदमियोंके सामने मुंह खोलनेका साहस न होता था।

इतनेमें बेगारने चिट्ठियोंका थैला लाकर डिप्टी साहबके आगे रख दिया। यद्यपि शहर यहांसे १५ मीलके लगभग था पर एक बेगार प्रतिदिन डाक लानेके लिए भेजा जाता था। डिप्टी साहबने उत्सुकताके साथ थैला खोला तो उसमें लाल फीतेसे बंधा हुआ एक सरकारी "कम्युनिक" (प्रकाशपत्र) निकल पड़ा। उसे गौरसे पढ़ने लगे।

४

आधी रात जा चुकी थी किन्तु हरिविलास अभीतक करवटें बदल रहे थे। मेजपर लैंप जल रहा था। वह उसी लाल फीतेसे बंधे हुए पत्रको बारबार देखते और बिचारोंमें डूब जाते थे। वह लाल फीता उन्हें न्याय और सत्यके खूनमें रंगा हुआ जान पड़ता था। किसी घातककी रक्तमय आंखें थीं जो उनकी ओर घूर रही थीं, या एक ज्वालाशिखा जो उनकी आत्मा और सत्यज्ञानको निगल जानेके लिए उनकी ओर लपकी चली आती थी। वह सोच रहे थे अबतक मैं समझता था कि मेरा कर्त्तव्य न्यायपर चलना है। अब मालूम हुआ कि यह मेरी भूल थी। मेरा कर्त्तव्य न्यायका गला

घोंटना है, नहीं तो मुझे ऐसे आदेश क्यों मिलते? क्या समाचार-पत्रोंका पढ़ना भी कोई अपराध है? क्या दीन किसानोंकी रक्षा करना भी कोई पाप है? मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे उन साधु संन्यासियोंपर कड़ी दृष्टि रखनेका हुक्म दिया गया है जो धर्मोपदेश करते हुए दिखाई दें। यही नहीं, मुझे यह भी देखना चाहिए कि कौन गज़ी गाढ़े के कपड़े पहने हुए हैं, किसके सिरपर कैसी टोपी है, उस टोपीपर कैसी छाप लगी हुई है। चरखा चलानेवालोंपर भी नजर रखनी चाहिए। मुझे उन लोगोंके नाम भी अपने रोजनामचे-में दर्ज करने चाहिए जो राष्ट्रीय पाठशालायें खोलें, जो देहातोंमें पंचायतें बनायें, जो जनताको नशेकी चीजें त्याग करनेका उपदेश करें। इस आज्ञाके अनुसार वह भी राजविद्रोही है जो लोगोंमें स्वास्थ्यके नियमोंका प्रचार करें, ताऊन और हैजेके प्रकोपमें जनताकी रक्षा करें, उन्हें मुफ्त दवायें दें। सारांश यह कि मुझे जातिके सेवकोंका, हितैषियोंका, शत्रु बनना चाहिए इसलिए कि मैं भी शासनका एक अंग हूं।

उन्होंने एक बार फिर लाल फीतेकी ओर देखा। हां, तो इस दशामें मेरा कर्त्तव्य क्या है? अपनी जातिका साथ दूं या विजातीय सरकारका? इस समस्याका कारण यही है कि हमारे शासक विजातीय हैं और उनका स्वार्थ प्रजाके हितसे भिन्न है। वह अपनी जातिके स्वार्थके लिए, गौरवके लिए, व्यापारिक उन्नतिके लिए यहांके लोगोंको अनन्त कालतक इसी दशामें रखना चाहते हैं। इसीलिए प्रजाके राष्ट्रीय भावोंको जागते देखकर वह उनको दबानेपर तुल

जाते हैं। उन्हें वह सरल व्यवस्थायें भी आपत्तिजनक जँचने लगती हैं जिन्हें प्रजा अपने आत्मसुधारके लिये करती है। नहीं तो क्या मद्‌त्यागके उपदेश भी सरकारकी आँखोंमें खटकते? शासनका मुख्य धर्म है प्रजाकी रक्षा, न्याय और शान्तिका विधान। अबतक मैं समझता था कि सरकार इस कर्त्तव्यको सर्वोपरि समझती है, इसीलिये मैं उसका भक्त था। जब सरकार अपने धर्मपथसे हट जाती है तो मेरा धर्म भी यही है कि उसका साथ छोड़ दूं। अपने स्वार्थके लिये देशका द्रोही नहीं बन सकता। सरकारसे मेरा थोड़े दिनोंका नाता है, देशसे जन्मभरका। क्या इस स्थायी अधिकारके गर्वमें अपने स्थायी सम्बन्धको भूल जाऊं? इस अधिकारके लिये अब मुझे देशका शत्रु बनना पड़ेगा। क्या देशको अपने स्वार्थपर न्योछावर कर दूं। एक तो वह हैं जो देश सेवापर आत्मसमर्पण कर देते हैं; उसके लिये नाना प्रकारके कष्ट झेलते हैं। एक मैं अभागा हूं जिसका काम यह है कि उन देशसेवकोंको जानका गाहक बनूं। लेकिन यह सम्बन्ध तोड़ दूं तो निर्वाह कैसे हो? जिन बच्चोंको अबतक सभी सुख प्राप्त थे उन्हें अब दरिद्रताका शिकार बनना पड़ेगा। जिस परिवारका पालन-पोषण अबतक अमीरोंके ढंगपर होता था उसे अब रो-रोकर दिन काटने पड़ेंगे। घरकी जायदाद मेरी शिक्षाके भेंट हो चुकी, नहीं तो कुछ खेती-बारी ही करके गुजर करता। वही तो मेरा मौरूसी पेशा था। कैसा संतोषमय जीवन था, अपने पसीनेकी कमाई खाते थे और सुखकी नींद सोते थे। इस शिक्षाने मुझे चौपट कर दिया, विलासका दास बना दिया, अना-

वश्यक आवश्यकताओंकी बेड़ी पैरोंमें डाल दी। अब तो उस पुराने जीवनकी कल्पनामात्रसे प्राण सूख जाता है।

हा! हृदयमें कैसी कैसी अभिलाषायें थीं, कैसे कैसे मनमोदक खाता था शिवबिलास बिलायत जाकर डाक्टरी पढ़नेका स्वप्न देख रहा है। सन्तबिलासको वकालतकी धुन सवार, छोटा श्रीबिलास अभीसे सिविल सरविसकी तैयारी कर रहा है। अब इन सभोंके मन्सूबे कैसे पूरे होंगे। लड़कोंको तो खैर छोड़ भी दूं तो वह किसी-न-किसी तरह गुजर कर ही लेंगे, लड़कियोंको क्या करूं। सोचा था इनका विवाह उच्च-कुलमें करूंगा, जातिका भेद मिटा दूंगा। यह मनोकामना भी पूरी होती नहीं दीखती। कहीं दूसरी जगह नौकरीकी तलाश करूं तो इतना वेतन कहां मिला जाता है। रईसोंके दरबारमें पहुंचना कठिन है। सरकारकी अवज्ञा करनेवालेको धर्ती आकाश कहीं ठिकाना नहीं। परमात्मन्, तुम्हीं सुझाओ क्या करूं?

इन्हीं चिन्ताओंमें पड़े-पड़े उन्हें नींद आ गई।

५

एक सप्ताह बीत गया, पर बाबू हरिबिलास अभीतक दुबिधामें ही पड़े थे। वह प्रायः उदास और खिन्न रहते थे। इजलासपर बहुत कम आते और आते भी तो मुकदमोंकी तारीख मुल्तवी करके फिर चले जाते। लड़के लड़कियोंसे भी बहुत कम बात-चीत करते, बात-बातपर झुंझला पड़ते; कुछ चिड़चिड़े हो गये थे। उन्होंने स्त्रीसे इस समस्याकी चर्चा की, पर वह इस्तीफा देनेपर उनसे सहमत न हुई।

उसमें न्यायका वह ज्ञान न था जो हरिबिलासके हृदयको व्यथित कर रहा था। लड़कोंसे इस विषयमें कुछ कहनेका उन्हें साहस न होता था। डरते थे कि वह निराश, निरुत्साह हो जायंगे। आनन्द-मय जीवनकी कैसी-कैसी कल्पनायें कर रहे होंगे, वह सब नष्ट हो जायंगी। इस विषयमें तो अब उन्हें कोई सन्देह न था कि सरकारने सत्पथको त्याग दिया और उसकी नौकरीसे मेरा उद्धार नहीं हो सकता पर सांसारिक चिन्तायें गलेकी जंजीर बनी हुई थीं। कोई ऐसा हुनर, कोई ऐसा उद्यम न जानते थे जिसपर उन्हें भरोसा होता, यहांतक कि साधारण क्रय-विक्रय भी उनके लिये कष्टसाध्य था। वह अपनेको इस नौकरीके सिवा और किसी कामके योग्य न पाते थे। और न अब इतना सामर्थ्य ही था कि कोई नया उद्यम सीख सकें। स्वार्थ और कर्त्तव्यकी उलझनमें उनकी अत्यन्त करुण दशा हो रही थी।

६

आठवें दिन उन्हें खबर मिली कि इस इलाक़ेमें मादक वस्तुओं-का निषेध करनेके लिये किसानोंकी एक पंचायत होनेवाली है, उप-देश होंगे, भजन गाये जायंगे और लोगोंसे मद्यत्यागकी प्रतिज्ञा ली जायगी। हरिबिलास मानते थे कि नशेके व्यसनसे देशका सर्वनाश हुआ जाता है, यहांतक कि नीची श्रेणीके मनुष्योंको तो इसने अपना गुलाम बना लिया है, अतएव इसका वहिष्कार सर्वथा स्तुत्य है। पहले एक बार वह मादक वस्तु विभागमें रह चुके थे, और उनके समयमें इस विभागकी आमदनी खूब बढ़ गयी थी। उस वक्त

इस प्रश्नको वह अधिकारियोंकी आंखसे देखते थे। टेम्परेन्सके उपदेशकोंको सरकारका विरोधी समझते थे। लेकिन इस लालफीतेवाले आज्ञापत्रने उनकी काया ही पलट दी थी। सरकारी प्रजा हित नीतिपर उन्हें लेशमात्र भी विश्वास न रहा था। इस आज्ञाके अनुसार उनका कर्त्तव्य था कि जाकर इस पंचायतकी कारवाइयोंको देखें और यदि उस त्यागके लिये किसीके साथ सख्ती या तिरस्कार करते पायें तो तुरन्त उसे बन्द कर दें। मनुष्योचित और पदोचित कर्तव्योंमें घोर संग्राम हो रहा था। इसी बीचमें हल्केका दारोगा कई सशस्त्र कान्सटेबलों और चौकीदारोंके साथ आ पहुंचा और सलाम करनेको हाजिर हुआ। हरिविलास उसकी सूरत देखते ही लाल हो गये, जैसे फूसमें आग लग जाय। कठोर स्वरसे बोले, आप यहाँ कैसे आये?

दारोगा—हजूरको इस पंचायतकी इत्तिला तो मिली ही होगी। वहां फ़िसाद होनेका खौफ़ है। इसलिये हजूरकी खिदमतमें हाजिर हुआ हूं।

हरिबिलास—मुझे इसका कोई भय नहीं है। हां, आपके जानेसे फ़िसाद हो सकता है।

दारोगाने विस्मित होकर कहा, "मेरे जानेसे!"

हरिबिलास—हां आपके जानेसे। रिआयाको आपसमें लड़ाकर आप अपना उल्लू सोधा करते हैं। मैं आपके हथकंडोंसे खूब वाक़िफ हूं। आपको मेरे साथ चलनेकी जरूरत नहीं।

दारोगा—सुपरिटेन्डेन्ट साहब बहादुरका सख्त हुक्म है कि इस मौक़े पर हजूरकी ख़िदमतमें हाजिर रहूं।

हरिबिलास—तो क्या आप मुझे नजरबन्द करने आये हैं ?

दारोगाने भयभीत होकर कहा, हजूरकी शानमें मुझसे ऐसी...

हरिबिलास—मैं तुम्हारे साहबका गुलाम नहीं हूं।

दारोगा—तो मेरे लिये क्या आर्डर होता है ?

हरिबिलास—जाकर अपने साफेको जला डालिये और वरदीको फाड़कर फेंक दीजिये और इस गुलामीकी जंजीरको जो आपकी कमरमें है और जिसे आप हुकूमतका निशान समझते हैं तोड़कर आज़ाद हो जाइये । सरकारी हुक्मोंकी बहुत तामील कर चुके, डाके और चोरीकी खूब तफ़तीश की और हरामका माल खूब जमा किया। अब जाकर कुछ दिनों घर बैठिये और अपने पापोंका प्रायश्चित्त कीजिये। रिआयाकी जान व मालकी हिफ़ाज़त करनेका स्वांग भरकर उनको अजाबमें न डालिये। यह किसानोंकी पञ्चायत है, लुटेरोंका जत्था नहीं है, सब एक जगह बैठकर नशे-बाजी बन्द करनेकी तदबीरें सोचेंगे। आपको मेरे साथ चलनेकी मुतलक ज़रूरत नहीं है।

बाबू हरिबिलासका मुखमंडल विमल क्रोधसे उत्तेजित हो रहा था और आंखोंसे ज्योति निकल रही थी । दारोगाजीपर रोब छा गया, और यह सोचते हुए कि या तो इन्होंने आज शराब पी है या इनपर कोई सख्त सदमा आ पड़ा है, थाने चले गये। यह शब्द बाबू हरिबिलासके अन्तःकरणसे निकले थे। यह उनके अन्तिम निश्चय-की घोषणा थी। दारोगाजीने इधर पीठ फेरी उधर उन्होंने अपना इस्तीफा लिखना शुरू किया।

"महाशय ! मेरा विश्वास है कि शासन संस्था ईश्वरीय इच्छा-का वाह्य स्वरूप है और उसके नियम भी ईश्वरीय नियमोंकी भांति दया सत्य और न्यायपर अवलम्बित हैं। मैंने इसी विश्वासके अ-धीन २० वर्षतक सरकारकी सेवा की। जब कभी मेरे आत्मिक आदेश और सरकारी हुक्ममें विरोध हुआ, मैंने यथा-साध्य आत्मा का आदेश पालन किया। मैंने अपनेको कभी प्रजाका स्वामी नहीं समझा, सदैव सेवक समझता रहा। इसलिए सरकारी पत्र नं०— तारीख—में जो आज्ञा दी गई है वह मेरी आत्मा और धर्मके इतनी विरुद्ध है और उसमें न्यायकी ऐसी हत्या की गई है कि मैं उसका पालन करना घोर पाप समझता हूं। मेरे विचारमें वर्त्तमान शासन सत्पथसे सम्पूर्णतः विचलित हो गया है। यह आज्ञा प्रजाके जन्म-सिद्ध स्वत्वोंको छीनना और उनके राष्ट्रीय-भावोंको बध करना चाहती है। वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शासक वृन्द प्रजाको अनन्त कालतक मूर्खता और अज्ञानमें व्यस्त रखना चाहते हैं और उसकी जागृतसे सशंक हैं। वह अपने उत्थान और सुधारके लिए जो प्रयत्न करना चाहती है उसे भी ताड़नीय समझते हैं, ऐसे दुष्कार्य-में योग देना अपनी आत्मा, विवेक, और जातीयताका खून करना है। अतएव अब मुझे इस राज-संस्थासे असहयोग करनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। मैं अपना पदत्याग करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि मुझे बिना बिलम्ब इस बन्धनसे मुक्त किया जाय।"

८

बाबू हरिबिलासने समझा था कि इस्तीफा मंजूर होनेमें कुछ देर

लगेगी लेकिन दूसरे ही दिन तारद्वारा मंजूरी आ गई। उनकी जगह-पर एक महाशय नियुक्त हो गये। हरिविलासने बड़ी खुशीसे चार्ज दिया, किन्तु शाम होते-होते उनकी यह खुशी गायब हो गई और अनेक चिन्ताओंने आ घेरा। बजाजके कई सौ रुपये बाकी थे, नौकरोंका वेतन भी बाकी पड़ा हुआ था, बंगलेका केराया ६ महीनेसे न दिया गया था, हलवाईका हिसाब-किताब चुकाना था, ग्वाले-के कुछ रुपये आते थे। इधर वह इजलाशपर बैठे हुए चार्ज दे रहे थे, उधर उनकी कोठीके द्वारपर लेनदारोंकी भीड़ लगी हुई थी। वह चार्ज देकर लौटे तो यह समूह देखकर उनका दिल बैठ गया। यों वह कुछ हाल और कुछ बकायाके रुपये अपनी सुविधाके अनुसार दे दिया करते थे। लेकिन आज जब हाल और बकाया दोनों ही चुकाना पड़ा तो यह रकम इस तरह बढ़ी जैसे साफ फर्शको हटा देने-से नीचे गर्दका एक ढेर दिखाई देने लगता है। उन्हें अबतक यह अनुमान ही न हुआ था कि मैं इतने रुपयोंका देनदार हूं। सेविंग-बैंककी सारी बचत इसी फुटकर हिसाबके चुकानेमें समाप्त हो गई। अब घोड़े, टमटम आदिकी भी जरूरत न थी। उन्हें नीलाम करके हाथमें कुछ रुपये कर लेना चाहते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल जब यह चीजें नीलाम होने लगीं तो वह यह देख हृदयविदारक दृश्यका सहन न कर सके। हताश होकर घरमें गये तो उनकी आंखें सजल थीं। सुमित्राने उन्हें दुःखी देखकर सहृदयतापूर्ण भावसे कहा, व्यर्थ दिल इतना छोटा करते हो। रंज करनेकी कोई बात नहीं यह तो और खुशीकी बात है कि जिस कामके करनेमें अधर्म था उससे गला छूट

गया। अब तुम्हें किसीपर अन्याय करनेके लिए कोई मजबूर तो न करेगा! भगवान किसी न किसी तरह बेड़ा पार लगावेंगे ही। अपने भाई बन्दोंपर अन्याय करते तो उसका दोष, पाप हमारे ही बाल-बच्चोंपर न पड़ता। भगवानको कुछ अच्छा करना था तभी तो उसने तुम्हारे मनमें यह बात डाली।

इन बातोंसे हरिविलासको कुछ तसकीन हुई। सुमित्रा पहले इस्तीफा देनेपर राजी न होती थी पर पतिको मानसिक कष्टसे निवृत्त करनेकी इच्छाने उसके धैर्य्य और संतोषको सजग कर दिया था।

हरिविलासने सुमित्राकी ओर श्रद्धाभावसे देखकर कहा, जानती हो कितनी तकलीफें उठानी पड़ेंगी।

सुमित्रा—तकलीफोंसे क्या डरना। धर्म रक्षाके लिए आदमी सब कुछ सह लेता है। हमें भी तो आखिर ईश्वरके दरबारमें जाना है। उसको कौन सा मुंह दिखाते।

हरिविलास—क्या बताऊं मुझे तो इस वैज्ञानिक शिक्षाने कहीं-का न रक्खा। ईश्वरपर श्रद्धा ही नहीं रही। यद्यपि मैंने इन्हीं भावों-से प्रेरित होकर इस्तीफा दिया है पर मुझमें यह सजीव और चैतन्य भक्ति नहीं है, मुझे चारोंओर अंधकार ही अंधकार दिखता है। लड़के अभीतक अपनेको संभालनेके योग्य नहीं हुए। शिवबिलास को सालभर भी और पढ़ा सकता तो वह घर संभाल लेता। संत-बिलासकी अभी तीन सालतक संभालनेकी जरूरत है और बेचारे श्रीबिलासको तो अभी कोई गिनता ही नहीं। अब यह बेचारे अद्धड़-में ही रह जायंगे। मालूम नहीं, मनमें मुझे क्या समझते हों।

सुमित्रा—अगर उन्हें ईश्वरने बुद्धि दी होगी तो अब वह तुम्हें अपना पिता समझनेके बदले देवता समझने लगेंगे।

८

रातका समय था। शिवविलास और उनके दोनों भाई बैठे हुये वार्तालाप कर रहे थे।

शिवबिलासने कहा, आजकल दादाकी दशा देखकर यही जी चाहता है कि गृहस्थीके जंजालमें न पड़ूं। कल इस्तीफा मंजूर हुआ है तबसे उनका चेहरा ऐसा उदास हो गया है कि देखकर करुणा आती है। कई बार इच्छा हुई कि चलकर उन्हें तस्कीन दूं लेकिन उनके सामने जाते हुए स्वयं मेरी आंखें सजल हो जाती हैं। आखिर हम्हीं लोगोंकी चिन्ता उन्हें सता रही है? नहीं तो उन्हें अपनी क्या चिन्ता थी? चाहें तो किसी स्कूल या कालेजमें अध्यापक हो सकते हैं। दर्शन और अर्थशास्त्रमें बहुत कुशल हैं।

सन्तविलास—आपने मेडिकल कालेजसे अपना नाम नाहक कटवा लिया। यह विभाग तो बुरा न था। आप सरकारी नौकरी न करते, घर बैठकर तो काम कर सकते थे। दादासे भी न पूछा। वह सुनेंगे तो उन्हें बहुत रंज होगा।

शिवबिलास—इसी लिए तो मैंने अबतक उनसे कहा नहीं। और फिर मौका भी नहीं मिला। डाक्टरीका विभाग कितना ही अच्छा हो लेकिन मैंने जो संकल्प कर लिया है उसपर स्थिर हूं। क्यों, तुम कुछ मदद कर सकोगे?

श्रीबिलास—वह देखिये मियां घोड़े अस्तबलसे निकले। अब

कलसे किसी दूसरे कोचवानके पाले पड़ेंगे, मारते मारते भुरकस निकाल लेगा। टूटी ठमटम भी सटर पटर करती हुई चली।

सन्तबिलास—मैं तो परीक्षाके पहले शायद आपकी कुछ मदद न कर सकूं। उसके बाद मुझसे जो काम चाहें, ले सकते हैं।

शिवबिलास—एम० ए० से क्यों तुम्हें इतना प्रेम है?

श्रीबिलास—एम० ए० का अर्थ है 'मास्टर आफ ऐस'

सन्तबिलास—यह मेरी बहुत पुरानी अभिलाषा है और अब लक्ष्यके इतना समीप आकर मुझसे नहीं हटा जाता।

शिवबिलास—अपने नामके पीछे एम० ए०, एल० एल० बी० का पुछल्ला लगाये बिना न मानोगे।

संत—(चिढ़कर) कोई और भी मानता है या मैं ही मानूं। सभी तो इन उपाधियोंपर जान देते हैं, और क्यों न दें, समाजमें इनका सम्मान कितना है। अभीतक शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसने अपनी डिग्रियां छोड़ दी हों। वह लोग भी जो असहयोगके नेता और स्तंभ बनते हैं अपने नामोंके साथ पुछल्ले लगानेमें कोई आपत्ति नहीं समझते, नहीं, बल्कि उसपर गर्व करते हैं। आपके राष्ट्रीय कालेजोंमें भी इन्हीं डिग्रियोंकी पूछ होती है। चरित्रको कोई पूछता भी नहीं। जब हम इसी कसौटीपर परखे जाते हैं तो मेरे उपाधि प्रेमपर किसीको हंसनेकी जगह नहीं है।

शिवबिलास—तुम तो नाराज हो गये। मेरा आक्षेप तुमपर नहीं बल्कि सभी उपाधि प्रेमियोंपर था। यदि असहयोगी लोग अभीतक उपाधियोंपर जान दे रहे हैं तो इससे इस प्रथाका दूषण कम नहीं

होता। यह उनके लिए और भी निन्द्य है। लेकिन हां, अब हवा बदल रही है, सम्भव है थोड़े दिनोंमें यह प्रथा मिट जाय। तुम एक वर्षमें मेरी सहायता करनेका वचन देते हो। इतने दिनतक एक समाचारपत्रका बोझ मैं अकेले कैसे संभाल सकूंगा।

संत—पहले यह तो बतलाइये आपकी नीति क्या होगी? अगर आपने भी वही नीति रक्खी जो दूसरे पत्रोंकी है तो अलग पत्र निकालनेकी क्या जरूरत है?

श्रीबिलास—मुझसे तो आप लोग पूछते ही नहीं। मैं भी मदरसा छोड़ रहा हूं।

शिव—तुम मेरे कार्य्यालयमें लेखक बन जाना।

संत—तुम क्यों बीचमें बोल उठते हो? हां भाई साहब, आपने कौन सी नीति ग्रहण करनेका निश्चय किया है?

शिव—मेरी नीति होगी सरल किन्तु विवेकशील जीवनका प्रचार। मैं विलासिता और दिखावेकी जड़ खोदनेकी चेष्टा करूंगा। हम आंखें बन्द किये हुए पच्छिमी जीवनका नकल कर रहे हैं। धनको हमने सर्व्वोच्च स्थान दे रक्खा है। हमारी कुलीनता, सम्मान, गौरव, प्रतिभा, सब कुछ धनके अधीन हो गयी है। हम अपने पुरुषाओंके सन्तोष और संयम त्यागको बिल्कुल भूल गये हैं। जहां देखिये वहीं धनपतियोंकी, साहूकारोंकी, जमींदारोंकी पताका लहरा रही है। मैं दीनरक्षाको अपना आदर्श बनाऊंगा। यद्यपि ये विचार नये नहीं हैं, कभी कभी पत्रोंमें इनपर टिप्पणियांकी जाती हैं, किन्तु अभीतक इनका महत्व दार्शनिक सिद्धान्तोंसे अधिक नहीं है, और

वह भी यूरपके बड़े बड़े विद्वानोंको नकल है। यह टिप्पणियां केवल मनोरंजनके लिए की जाती हैं, इसी कारण इनका किसीपर असर नहीं पड़ता। मेरा जीवन इस सिद्धान्तको चरितार्थ करेगा। यह विचार बरसोंसे मेरे मनमें तरंगे मार रहे हैं। अब यह तरंगे बाहर निकलकर धनलोलुपता और इन्द्रियलिप्साकी दीवारोंसे टकरायेंगी। मैं तुमसे सच कहता हूं धनका यह मान देखकर कभी कभी मेरा रक्त खौलने लगता है। विद्वानों और गुणियोंकी इज्जत ही उठ गई। एक समय वह था कि बड़े-बड़े सम्राट् ज्ञानियोंके सामने सिर झुकाते थे। आजकल तो धार्मिक संस्थायें भी धनियोंका मुंह ताकती रहती हैं। हमारे साधु महात्मा, उपदेशक, देहातोंमें भूलकर भी नहीं जाते। वह ऊंचे-ऊंचे सुसज्जित पण्डालोंमें व्याख्यान देते हैं, मोटरों-पर हवा खाते और सुन्दर प्रसादोंमें निवास करते हैं। शोक तो यह है कि विद्वज्जन भी इसी धनदेवके उपासक हैं। जिन्हें संतोष और सरलताका नमूना होना चाहिए था वह भी अपनी विद्या और योग्यताको मोतियोंके तौल बेचते हैं। धन-लालसाने उन्हें भी ग्रस लिया, त्यागका तो लोप ही हो गया।

संत– आपके विचार तो साम्यवादियोंकेसे हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि वह लोग विद्वानोंको अपने समाजमें क्या स्थान देते हैं?

शिव—खूब मालूम है, ऐसे विद्वान इसी बर्त्तावके योग्य हैं। जिस प्रकार भूमिवाले अपनी भूमिको, व्यापारवाले अपने व्यापार-को भोग विलासका साधन बनाते हैं उसी प्रकार विद्वान लोग भी

अपनी विद्या और सिद्धिको इन्द्रियोंके सुखपर बलिदान करते हैं। ऐसी दशामें उन्हें यदि धनियों और भूपतियोंके साथ गिना जाता है तो कोई अन्याय नहीं है ।

इतनेमें एक सुन्दरी बालिका कमरेमें आई। यह बाबू हरि-विलासकी छोटी लड़की अंजनी थी। कन्या पाठशालामें पढ़ती थी। श्रीविलासने कहा, आओ अंजनी आओ, यह दोनों महाशय तो बड़ी बड़ी बातें कर रहे हैं, हम तुम भी अपने जीवनके छोटे छोटे मन्सूबे बांधें। मैंने तो खेती करनेका विचार किया है।

अंजनी—मैं तुम्हारी गाय दुहूंगी, दही जमाऊंगी, घी निकालूंगी।

श्री—और चर्खा ?

अंजनी—भैया मुझसे चर्खा न चलाया जायगा, यह बुढ़ियोंका काम है।

श्री—वाह, इस चर्खेपर तो सब कुछ निर्भर है। हमारे देशमें ७० करोड़का कपड़ा हर साल विलायतसे आता है। शायद १० करोड़का कपड़ा इटली, जापान, फ्रान्स आदि देशोंसे आता होगा। हम तुम, और भागवती आध पाव सूत रोज़ कातें और सालमें ३०० दिन काम करें तो तीन मन सूत कात लेंगे। ३ मन सूतमें कम-से-कम १०० जोड़े धोतियां तैयार होंगी। अगर एक जोड़ेका दाम ४) ही रक्खें तो हम साल भरमें ४००) की धोतियां बना लेंगे। धुनाई मैं आप कर लूंगा। यह ३ प्राणियोंके साधारण परि-श्रमका फल है यदि ३० करोड़की आबादीमें केवल ५० लाख

मनुष्य यह काम करने लगें तो हमारे देशको ८० करोड़ वार्षिक बचत हो जायगी। अगर एक करोड़ मनुष्य इस धन्धेमें लग जायं तो हमें कपड़ेके लिए अन्य देशोंको एक पैसा भी न देना पड़े।

शिव—(हिसाब लगाकर) यार तुमने खूब हिसाब लगाया। इतने महत्वपूर्ण कामके लिए कुल ५० लाख मनुष्योंकी आवश्यकता है? मुझे अबतक यह अनुमान ही न था कि इतने कम आदमियों-की मेहनत हमारी आवश्यकताओंको पूरा कर सकती है। चलो मैं भी तुम्हारी मदद करूंगा। अपने पत्रमें घरेलू उद्योग-धन्धोंका खूब प्रचार करूंगा

संत—आपके और मेरे आदर्शोंमें बड़ा अन्तर है। मेरा विचार है कि बुद्धि और मस्तिष्कसे काम करनेवालोंको श्रमजीवियोंपर सदैव प्रधानता रहेगी। उनके कामका महत्व कहीं अधिक है। यदि आप उनके लिए अवस्थानुकूल जीवनवृत्तिकी व्यवस्था नहीं करेंगे तो वह एकाग्रचित्त होकर विद्याकी उन्नति न कर सकेंगे और उसका परिणाम बुरा होगा। संतोष और त्याग राष्ट्रीय अवनतिके लक्षण हैं। उन्नत जातियां अधिकार, राज्य विस्तार, सम्पत्ति और गौरवपर जान देती हैं, यहां तक कि बोलशेविस्ट भी दिनोंदिन अपने राज्यकी सीमायें बढ़ाते चले जाते हैं।

शिव—इस विषयपर फिर बातें होंगी, चलो इस समय अच्छा मौक़ा है, दादा घरमें अम्मां के पास बैठे हुए हैं, ज़रा उन्हें तस-कीन दे आयें।

६

तीनों युवक जाकर हरिबिलासके सामने खड़े हो गये। उन्होंने चिन्तित भावसे शिवबिलासको देखकर पूछा, तुम्हारा कालेज कब खुलेगा?

शिव—कालेज तो १५ जनवरी को खुलेगा लेकिन मैं वहाँ जाना नहीं चाहता। नाम कटवा लिया।

हरिबिलास—यह तुमने क्या नादानी की। तुम्हारी समझ में क्या मैं ४ महीनेतक भी तुम्हारी सहायता न कर सकता। इसी एप्रिलमें तो तुम्हारी परीक्षा होनेवाली थी कमसे कम मुझसे पूछ तो लेते, या मेरा इतना अधिकार भी नहीं है।

शिव—इतनी भूल तो अवश्य हुई, लेकिन जब आपने न्यायके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया तो मेरे लिए यह लज्जाकी बात थी कि आपके आदर्शके विरुद्ध व्यवहार करता। मैंने डाक्टरी पढ़ने-का इरादा छोड़ दिया। कमसे कम इसे जीविकाका आधार नहीं बनाना चाहता, मेरा विचार एक समाचारपत्र निकालने का है।

हरिबिलास—जेलखाने जानेके लिए भी तैयार हो ?

शिवबिलास—यदि न्याय और सत्यकी रक्षाके लिए जेल जाना पड़े तो मैं इसे अहोभाग्य समझूंगा।

हरिबिलास—मालूम होता है तुम्हें हवा अच्छी तरह लग गई। रुपयोंका क्या प्रबन्ध किया है?

शिवबिलास—इसकी आप चिन्ता न कीजिए। मेरे कई मित्रोंने सहायता करने का बचन दिया है।

हरिविलास—अच्छी बात है, इसका भी मजा चख लो। अभी राजनीतिके चक्करमें आये नहीं हो, समझते हो जातिसेवा जितनी स्तुत्य है उतनी ही सुगम भी है। पर तुम्हें शीघ्रही अनुभव हो जायगा कि यहां पग पगपर कांटे हैं। मैं ऐसा स्वार्थान्ध और भाव-शून्य नहीं हूं कि तुम्हारे देशानुरागको दबाना चाहूं। किन्तु इतना जता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि खूब सोच समझ कर इस क्षेत्रमें आना। अगर कुछ दूर चलकर हिम्मत छोड़ दी तो फिर कहीं मुंह दिखाने लायक़ न रहोगे। मैं तुमसे मदद नहीं चाहता और न मेरे लिए यह कम गौरवकी बात है कि मेरा पुत्र देशसेवामें तल्लीन हो जाय, अपनेको जातिपर न्योछावर कर दे, केवल तुम्हें कठिना-इयोंसे सचेत कर देना चाहता हूं। तुम कब जाओगे सन्तू ?

सन्त—मैं भी १५ जनवरी को जाऊंगा।

हरिविलास—तुम्हें कितने रुपयों की ज़रूरत होगी। इसी महीनेमें तो तुम्हें इम्तहानकी फीस भी देनी होगी।

सन्त—जी हां कोई ढाई सौकी जरूरत है।

हरिविलास—(बग़लें झांकते हुये) इससे कममें काम न चलेगा ?

सन्त—असंभव है, ६ महीनोंकी पेशगी फीस देनी है, इम्त-हानकी फीस, बोर्डिङ्गकी फीस, सभी तो चुकानी है। एक सूट भी बनवाना चाहता हूं। मेरे पास कोई अच्छा सूट नहीं है।

हरिविलास—इस समय सूट रहने दो, फिर बनवा लेना, हां फीसका प्रबन्ध मैं कर दूंगा। इससे कहां मुक्ति ? पढ़ो तो मुश्किल-से ५ महीने और फीस दो पूरे सालकी।

सन्त—तो फिर कुछ न दीजिये, मैं स्वयं कोई प्रबन्ध कर लूंगा। आपके ऊपर ख़ाहमख़्वाह बोझ नहीं डालना चाहता।

हरिबिलास—यह तुम्हारी बुरी आदत है कि ज़रा ज़रासी बातपर चिढ़ जाते हो। मेरी हालत देख रहे हो, फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं।

सन्त—तो क्या आपकी इच्छा है कि मैं भी कालेजसे नाम कटा लूं।

हरिबिलास—यह तो मेरी इच्छा नहीं है लेकिन अब तुम्हें अवस्थानुसार अपना खर्च घटाना पड़ेगा। मुझे यह देखकर खेद होता है कि वर्तमान दशाओंका तुम्हारे ऊपर बिलकुल असर नहीं हुआ। आजकल समस्त देश सरल जीवनकी ओर झुका हुआ है। कोई मनुष्य अपने ठाटबाट, टीमटामपर गर्व करनेका साहस नहीं कर सकता। रेशमी वस्त्र और डासनके जूते और सुनहरे चश्मे अब तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते हैं। विशेषतः शिक्षित समुदायके विलास प्रेमको तो जनता सर्वथा अक्षम्य समझती है। शिक्षित लोगोंसे अब सेवा और उत्सर्गकी आशा की जाती है। वकीलोंपर अब सम्मानकी दृष्टि नहीं पड़ती, लोग उनसे विमुख होते जा रहे हैं। धनलोलुप अध्यापकोंको तो जनता घृणाकी निगाहसे देखती है। मैंने स्वार्थवश तुम्हें वकालतकी प्रेरणा की थी। किन्तु अब मुझे विश्वास होता जाता है कि हमारी जातिकी अवनतिका एक मुख्य कारण यही पेशा है। इसकी बदौलत हमारी अदालतोंमें न्याय सर्वसाधारणके लिये अलभ्य हो रहा है। जब एक एक पेशीके लिए दो दो, चार चार

सौ, यहांतक कि दो दो, चार चार हज़ार लिये जाते हैं तो स्पष्ट है कि यह समय या परिश्रमका मूल्य नहीं बल्कि लोगोंकी ईर्षा और दुर्जनताका व्याज है। जिस पेशेका आधार मानव दुर्बलताओंपर हो वह समाजके लिए कभी मङ्गलकारी नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे इरादोंमें विघ्न नहीं डालना चाहता, लेकिन यदि तुम वकालतको न्यायरक्षाके लिए नहीं, विलासके लिए ग्रहण करना चाहते हो तो बेहतर है कि तुम इसे तिलांजलि दे दो।

सन्तबिलासने कुछ उत्तर न दिया। खिन्न होकर यहांसे उठ गये। तब बाबू हरिबिलासने श्रीबिलाससे पूछा, तुम तो इम्तहानकी तैयारी कर रहे हो?

श्रीबिलास—जब आप कह रहे हैं कि दौलतवालोंकी आजकल कोई कदर नहीं है तो फिर ऐसी शिक्षासे क्या फ़ायदा। जिसका उद्देश्य केवल धन कमाना है। मेरा भी नाम कटवा दीजिये। मैं आपकी सेवामें रहना चाहता हूं। मेरा इरादा खेती करनेका है। अञ्जनी भी मेरी मदद करेगी। आखिर आप देहातमें चलकर कुछ न कुछ खेती ज़रूर ही करायेंगे। मुझको इस कामके लिये तैयार कर दीजिये।

हरिबिलासके मुखमण्डलपर आत्माभिमानकी लाली दिखाई दी। सुमित्रासे बोले, लो श्रीबिलासने तुम्हारी चिन्ताओंका अंत कर दिया। तुम सोच रही थीं कि कैसे क्या होगा। चलकर आरामसे गांवमें रहो। यह खेती करेगा तुम आरामकी नींद सोओ और रामका नाम लो।

१०

इसके तीसरे ही दिन बाबू हरिबिलास अपने गांवमें आ गये। मकान बेमरम्मत पड़ा हुआ था, आगे पीछे घास जम गई थी; गांववालोंने द्वारपर खाद और कूड़ेके ढेर लगा दिये थे। इधर वह कई सालसे घर न आये थे। साफ़ बङ्गलोंमें रहनेके आदी हो गये थे। उनके देखते यह घर झोंपड़ेसे भी बदतर था। शिवबिलासने असवाब उतारा और झाड़ लेकर द्वारकी सफ़ाई करने लगा। अंजनी भी घरमें झाड़ देने लगी। श्रीबिलास कुछ देरतक तो खड़ा देखता रहा, फिर टोकरी लेकर कूड़ा फेंकने लगा। गांवमें यह खबर फैल गयी कि हरिबिलासने गांधी महात्माके हुक्मसे इस्तीफा दे दिया। लोग इधर उधरसे आने लगे। कोई उनको सत्यवादी कहता था, कोई कहता था रिशवत ली है, बर्खास्त हो गये हैं तो यह बहाना कर रहे हैं। हरिबिलास एक टूटी खाटपर उदास बैठे हुए थे, सुमित्रा भीतर खड़ी सोच रही थी, कि यह कूड़े का पहाड़ क्योंकर हटेगा। पहले यह लोग जब घर आते थे तो गांवके लोग संकोचवश इनके समीप न आते थे। इनके ठाटबाटकी सामग्रियोंको कौतूहलकी दृष्टिसे देखते थे पर कुछ बोलनेकी हिम्मत न पड़ती थी। किन्तु अबकी वह विस्मयकारी वस्तुयें न थीं न लड़कोंमें वह शेखी थी, न हरिबिलास और सुमित्रामें वह बड़प्पनकी ऐंठ। अतएव सबके सब उनसे सहानुभूति करने लगे। स्त्रियां अंजनीके साथ घरकी सफाई करने लगीं, कई आदमियोंने शिवबिलासके हाथसे झाड़ छीन लिया और कूड़ा फेंकने लगे।

राम भरोसे पण्डितने कहा, भैया भला कियो इस्तीफ़ा दे दिहेव, देस विदेस मारे-मारे फिरत रह्यो। घर माटीमें मिला जात रहा।

शेख ईदू बोले, चाकरी चाहे छोटी हो या बड़ी हो, मुदा चाकरी ही है। जब अल्लाहने घरमें सब कुछ दिया है तो काहेको कोऊकी बन्दगी उठाई जाय।

गोबर चौकीदार बोला, मुदा भैया हुद्दा बहुत बड़ा भारू रहै। ई जिला भरेमां अस बड़वार हुद्दा कोऊ नाहीं पायेस।

भोजू कुरमी बोले, हुद्दा तो भारू रहै मुदा कितने गरीबन कै गला रेतैका परत रहा। सैकरनका जेहल पठै दिये होइ हैं। ई लड़ाई मां गरीबनका मार-मार केतना करजा दियावैके परा होई। दौड़ा करैं जात रहे होइ हैं तो केतना वेगार लेका परत रहा होई। हज्जारन किसाननका वेदखली; कुड़की, अखराज इनके हाथन भया होई, अब घरमां रहिहैं तो ई पापनसे तो गला छूट जाई।

गोबर—रुआब केतना रहे, हकूमत केतनी रहै।

भोजू—रुआब हुद्दासे नहीं होत है, रुआब भलमनसीसे होत है, विद्यासे होत है। रामभरोसे पण्डितका देखके काहे सब कोऊ खटियासे उठके पैलगी करत है। थानेदार आवत हैं तो उनकी खातिर सेर भर आटा देत सबका केतना अखरत है, नाहीं तो सासतरीजी जेके घर अपने चार छ चेलन सहित जाय परत हैं ऊ आपन भाग सराहत हैं। जिलामें एकसे एक हाकिम परे हैं। महात्माजीके बरोबर है कोऊका रुआब? आज हुकुम दें तो मनई आगमां कूदैका तैयार हैं।

रामभरोसे—सन्त बिलास बाबू नाहीं देख परत हैं।

हरिबिलास—कालेजमें वकालत पढ़ रहे हैं।

रामभरोसे—ई विद्या तो भैया तुम उनका नाहके पढ़ावत हौ। बड़ा बड़ा कुकरम करैका परत है। ओकिलनका मारा जिला तबाह होइ गवा, सब मारेन लड़ाय लड़ायके देसका खोखर कै दिहेन।

ईदू—बाबू तुम अब आपन जमीन छोड़ाय लेव और मजेसे खेती करो। चाकरी बहुत दिन किह्यो, अब कुछ दिन गिरहस्तीका मजा लेव। उतना सुख तो न पैहो पर चोला आनन्द रही। परदेसमां जौन कमात रहे होइहो तौन सब कपड़ा लत्ता, कुरसी, मेच, मेवा, मिठाईमां उड़ जात रहा होई। २५-३०) का तो दूध पी जात रहा होइ हौ, ३०-४०) से कम घरका किराया न परत रहा होई। तुम्हार कुल खेत छूट जाय तो मजेसे चार हरकी खेती होय लागे।

हरिबिलासने संकोचसे मुस्कुराकर कहा, रुपये कहांसे लाऊं? सब आदमियोंने उनकी ओर संदिग्ध भावसे देखा, मानों वह कोई अनोखी बात कह रहे हैं। अन्तमें भोजू बोला, का कहत हौ भैया, कौन बहुत रुपैया हैं। तीन चार हजार तो तुम्हरे संदूकके एक कोनेमें धरा होई। इतनी बड़ी तलब पावत रह्यो, नजर नियाज लेतै रहे होइहौ इतना सब कहां उड़ायौ?

हरि—मैंने रिशवत कभी नहीं ली। मासिक वेतनमें खर्च ही कठिनतासे चलता था, बचत कहांसे होती।

भोजू—बेटा, तब तो तुम्हार चाकरी गुनाह बेलज्जत है। नाहीं अस खुस्खका होइहौ, दस बीस हजार तो होबै करी।

हरि—नहीं चचा सच मानो मैं बिलकुल खाली हाथ हूं।

भोजू—तब गुजर बसर कसस होई?

हरि—ईश्वर मालिक हैं।

भोजू—दूनो लड़कन अबकी बहुत सुसोल देख परत हैं। पहले तो कोऊसे बाते न करत रहे।

यही बातें हो रही थीं कि गांवके जमींदार ठाकुर करनसिंह अपने दो मुसाहिबोंके साथ हाथीपर आते दिखाई दिये। लोग तुरन्त चारपाइयोंसे उठ बैठे। हरिबिलासके सामने ऐसे कितने ही जमींदार नित्य सलाम करने आया करते थे। पर करनसिंहको देखकर वह भी खड़े हो गये। हाथी रुका। करनसिंह उतर पड़े और हरि-बिलासका हाथ पकड़कर उन्हें चारपाईपर बैठाकर आप भी बैठ गये।

हरिबिलासने कुशल समाचार पूछा। ठाकुरने श्रद्धापूर्ण भावसे कहा, यह भूमि आपके चरणोंसे पवित्र हो गई। अब यहां सब कुशल है। कल प्रातःकाल पत्र खोला तो आपहीके आनन्द समा-चारपर नज़र पड़ी। आपके साहस और पुरुषार्थको धन्य है। मुझे महीनोंसे ज्वर आता था पर सत्य मानिये यह शुभ समाचार देखते ही मैं चङ्गा हो गया। महीनोंसे दवाइयां खा रहा था चारपाईसे उठना कठिन था। आज आपकी सेवामें खड़ा हूं। यह आपके पदार्पणका शुभ फल है। परमात्माने हमलोगोंका उद्धार करनेके लिए आपके हृदयमें यह प्रेरणा की। हमने इधर कुछ दिनोंसे पंचायत स्थापित की है। उसका कोई ऐसा सरपंच नहीं मिलता था जिसपर जनताको विश्वास

हो। आपको परमात्माने उसका बेड़ापार करनेके लिए भेजा है। उसके प्रधानका आसन ग्रहण करके हमें उपकृत कीजिये। जूहीके राजा साहब, बगटाके खां साहब और राय दुनीचन्द उसके सदस्य हैं। मैं उनकी ओरसे यह निमन्त्रण लेकर आपकी सेवामें आया हूं।

हरिविलासने सकुचाते हुए कहा, आप मुझे इस योग्य समझते हैं यह आपकी कृपा है। पर वास्तवमें मैं इस सम्मानका अधिकारी नहीं हूं। जिस पंचायतके सदस्य ऐसे ऐसे माननीय लोग हों, उसका प्रधान बननेका साहस मैं नहीं कर सकता।

करनसिंह—बाबू साहब आप अपने मुंहसे ऐसा न कहिए। आप पहले एक परगनेके हाकिम थे। आज सहस्रों हृदयोंपर आपका अधिकार है। क्या छोटे क्या बड़े सब आपको पूज्य समझते हैं। आपको मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी।

हरिविलास इस सम्मान-पदके भारसे सिर न उठा सके। करनसिंहने उठकर फूलोंका हार उनके गलेमें डाल दिया।

इसके बाद करनसिंह एक क्षणतक किसी विचारमें डूबे रहे। जान पड़ता था कुछ कहना चाहते हैं पर संकोचके मारे ज़बान नहीं खुलती। अन्तमें लजाते हुए बोले, बाबूजी मेरी एक प्रार्थना तो आपने मान ली, अब मुझे एक दूसरी प्रार्थना करनेका साहस हो रहा है। आज्ञा हो तो कहूं।

हरिविलास—शौक़से कहिये मैं सहर्ष आपकी सेवा करूंगा। करनसिंहने जेबसे एक बन्द लिफ़ाफ़ा निकाला और बोले मैं इसे

१

जोखू भगत और बेचन चौधरीमें तीन पीढ़ियोंसे अदावत चली आती थी। कुछ डाँड़मेड़का झगड़ा था। उनके परदादोंमें कई बार खून खच्चर हुआ। बापोंके समयसे मुकद्दमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्टतक गये। लड़कोंके समयमें संग्रामकी भीषणता और भी बढ़ी। यहांतक कि दोनों ही अशक्त हो गये। पहले दोनों इसी गांवमें आधे-आधेके हिस्सेदार थे, अब उनके पास उस झगड़ेवाले खेतको छोड़कर एक अङ्गुल ज़मीन भी न थी। भूमि गयी, धन गया, मान मर्यादा गयी, लेकिन वह विवाद ज्योंका त्यों बना रहा! हाईकोर्टके धुरन्धर नीतिज्ञ एक मामूली सा झगड़ा तै न कर सके।

इन दोनों सज्जनोंने गांवको दो विरोधी दलोंमें विभक्त कर दिया था। एक दलकी भंग बूटी चौधरीके द्वारपर छनती तो दूसरे दलके चरस गांजेके दम भगतके द्वारपर लगते थे। स्त्रियों और बालकोंके भी दो दल हो गये थे। यहांतक कि दोनों सज्जनोंके सामाजिक और धार्मिक विचारोंमें भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी। चौधरी

कपड़े पहने, सत्तू खा लेते और भगतको ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरीको भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातनधर्मी बने तो चौधरीने आर्य समाजका आश्रय लिया, जिस बजाज, पन्सारी या कुंजड़ेसे चौधरी सौदा लेते उसकी ओर भगतजी ताकना भी पाप समझते थे, और भगतजीके हलवाईकी मिठाइयाँ, उनके ग्वालेका दूध और तेलीका तेल चौधरीके लिये त्याज्य था। यहांतक कि उनके आरोग्यके सिद्धान्तोंमें भी भिन्नता थी, भगतजी वैद्यकके कायल थे, चौधरी युनानी प्रथाके माननेवाले। दोनों चाहे रोगसे मर जाते पर अपने सिद्धान्तोंको न छोड़ते।

२

जब देशमें राजनैतिक आन्दोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गांवमें भी पहुंची। चौधरीने आन्दोलनका पक्ष लिया, भगत उसके विपक्षी हो गये। एक सज्जनने आकर गांवमें किसान सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी, स्वराज्यकी चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गये, भगतने राजभक्तिका पक्ष लिया। चौधरीका घर स्वराज्यवादियोंका अड्डा हो गया, भगतका घर राजभक्तोंका क्लब बन गया।

चौधरी जनतामें स्वराज्यवादका प्रचार करने लगे—मित्रो, स्वराजका अर्थ है अपना राज। अपने देशमें अपना राज हो तो वह अच्छा है कि किसी दूसरेका राज हो वह?

जनताने कहा—अपना राज हो वह अच्छा है।

चौधरी—तो यह स्वराज कैसे मिलेगा? आत्मबलसे, पुरु-

षार्थसे, मेलसे, एक दूसरेसे द्वेष छोड़ दो, अपने झगड़े आप मिल-
कर निपटा लो।

एक शङ्का—आप तो नित्य अदालतमें खड़े रहते हैं।

चौधरी—हां, पर आजसे अदालत जाऊं तो मुझे गऊ हत्या-
का पाप लगे। तुम्हें चाहिये कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने
बाल-बच्चोंको खिलाओ, और बचे तो परोपकारमें लगाओ, वकील,
मुख्तारोंकी जेब क्यों भरते हो, थानेदारको घूस क्यों देते हो,
अमलोंकी चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के अपने धर्मकी
शिक्षा पाते थे, वह सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे। अब वह
विदेशी मदरसोंमें पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक़ करते
हैं, अपने देवताओं और पितरोंकी निन्दा करते हैं, सिगरेट पीते
हैं, बाल बनाते हैं और हाकिमोंकी गोड़धरिया करते हैं। क्या
यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकोंको धर्मानुसार
शिक्षा दें?

जनता—चन्देसे पाठशाला खोलनी चाहिये।

चौधरी—हम पहले मदिराका छूना पाप समझते थे, अब गांव-
गांव और गली-गलीमें मदिराकी दूकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी
कमाईके करोड़ों रुपये गांजे-शराबमें उड़ा देते हैं।

जनता—जो दारू भाँग पीये, उसे डांड लगाना चाहिये।

चौधरी—हमारे दादा बाबा, छोटे बड़े सब गाढ़ा गजी पहनते
थे हमारी दादी, नानी चरखा काता करती थीं। सब धन देशमें
रहता था। हमारे जोलाहे भाई चैन की बंशी बजाते थे। अब हम

विदेशके बने हुए महीन रंगीन कपड़ोंपर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देशवाले हमारा धन ढो ले जाते हैं, बेचारे जुलाहे कंगाल हो गये। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीनकर दूसरोंके सामने रख दें?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरी—अपने घरका बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतोंको त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कोंको धर्म-कर्म सिखाओ, मेलसे रहो, बस यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराज्यके लिये खूनकी नदी बहेगी वे पागल हैं, उनकी बातोंपर ध्यान मत दो।

जनता यह बातें बड़े चाहसे सुनती थी, दिनों दिन श्रोताओं-की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरी सबके श्रद्धाभाजन बन गये।

३

भगत भी राजभक्तिका उपदेश करने लगे—

"भाइयो, राजाका काम राज करना और प्रजाका काम उसकी आज्ञा पालन करना है, इसीको राजभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें हमें इसी राजभक्तिकी शिक्षा दी गयी है। राजा ईश्वरका प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञाके विरुद्ध चलना महान् पातक है। राजविमुख प्राणी नरकका भागी होता है।

एक शङ्का—राजाको भी तो अपने धर्मका पालन करना चाहिये।

दूसरी शङ्का—हमारे राजा तो नामके हैं, असली राजा तो विलायतके बनियें महाजन हैं।

तीसरी शङ्का—बनियें धन कमाना जानते हैं, राज करना क्या जानें।

भगतजी—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतोंमें मत जाओ, पञ्चायतोंमें मुकद्दमे ले जाओ, ऐसे पंच कहां हैं जो सच्चा न्याय करें, दूधका दूध पानीका पानी कर दें। यहां मुंह देखी बातें होंगी। जिनका दबाव है उनकी जीत होगी। जिनका कुछ दबाव नहीं है वह बेचारे मारे जायंगे। अदालतोंमें सब कार्रवाई क़ानूनसे होती है, वहां छोटे बड़े सब बराबर हैं, शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। इन अदालतोंको त्यागना अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है।

एक शङ्का—अदालतमें जायं तो रुपयेकी थैली कहांसे लावें?

दूसरी शङ्का—अदालतोंका न्याय कहने ही को है, जिसके पास बने हुए गवाह और दांव पेंच खेले हुए वकील होते हैं उसीकी जीत होती है, झूठे सच्चेकी परख कौन करता है, हाँ, हैरानी अलबत्ता होती है।

भगत—कहा जाता है विदेशी चीजोंका व्यवहार मत करो। यह गरीबोंके साथ घोर अन्याय है। हमें बाजारमें जो चीज सस्ती और अच्छी मिले, वह लेनी चाहिये। चाहें स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा सेंतमें नहीं आता कि उसे रद्दी भद्दी स्वदेशी चीजोंपर फेंकें।

एक शङ्का—पैसा अपने देशमें तो रहता है, दूसरोंके हाथमें तो नहीं जाता।

दूसरी शङ्का—अपने घरमें अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियोंके घरका अच्छा भोजन करने लगें ?

भगत—लोग कहते हैं कि लड़कोंको सरकारी मदरसोंमें मत भेजो—सरकारी मदरसोंमें न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी-बड़ी नौकरियां कैसे पाते, बड़े-बड़े कारखाने कैसे चलाते, बिना नयी विद्या पढ़े अब संसारमें निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़कर पत्रा देखने और कथा बांचनेके सिवाय और क्या आता है ? राज-काज क्या यही पोथी बांचनेवाले लोग करेंगे ?

एक शङ्का—हमें राज काज न चाहिये, हम अपनी खेतीबारी हीमें मगन हैं, किसीके गुलाम तो नहीं।

दूसरी शङ्का—जो विद्या घमंडी बना दे उससे मूरख ही अच्छा। यह नयी विद्या पढ़कर तो लोग सूट-बूट, बूड़ी-छड़ी, हैट-कोट, लगाने लगते हैं, अपने शौक़के पीछे देशका धन विदेशियोंकी जेबमें भरते हैं। ये देशके द्रोही हैं।

भगत—गांजा शराबकी ओर आजकल लोगोंकी कड़ी निगाह है। नशा बुरी लत है इसे सब जानते हैं। सरकारको नशेकी दूकानोंसे करोड़ों रुपये सालकी आमदनी होती है। अगर दूकानोंमें न जानेसे लोगोंको नशेकी लत छूट जाय तो बड़ी अच्छी बात है। लेकिन लतीकी लत कहीं छूटती है। वह दूकान पर न जायगा तो चोरी छिपे किसी न किसी तरह दूने चौगुने दाम देकर, सजा काटनेपर तैयार होकर अपनी लत पूरी करेगा। तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकारका नुकसान अलग हो और ग़रीब

रैयतका नुकसान अलग हो। और फिर किसीको नशा खानेसे फ़ायदा होता है। मैं ही एक दिन अफ़ीम न खाऊं तो गाँठोंमें दर्द होने लगे, दम उखड़ जाय और सरदी पकड़ ले।

एक आवाज़—शराब पीनेसे बदनमें फुर्ती आ जाती है।

एक शङ्का—सरकार अधर्मसे रुपया कमाती है, उसे यह उचित नहीं है। अधर्मीके राजमें रहकर प्रजाका कल्याण कैसे हो सकता है?

दूसरी शङ्का—पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसेकी चाट हुई। इतनी मजूरी किसको मिलती है कि रोटी कपड़ा भी चले और दारू शराब भी उड़े। या तो बाल बच्चोंको भूखों मारो या चोरी करो। जूआ खेलो और बेईमानी करो। शराबकी दूकान क्या है, हमारी गुलामीका अड्डा है।

४

चौधरीके उपदेश सुननेके लिये जनता टूटती थी लोगोंको खड़े होनेकी जगह न मिलती। दिनों दिन चौधरीका मान बढ़ने लगा, उनके यहाँ नित्य पञ्चायतोंकी, राष्ट्रोन्नतिकी चर्चा रहती। जनताको इन बातोंसे बड़ा आनन्द और उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञानकी वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ताका अनुभव होने लगा। निरङ्कुशता और अन्यायपर अब उनकी तिउरियां चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतन्त्रताका स्वाद मिला। घरकी रूई, घरका सूत, घरका कपड़ा, घरका भोजन, घरकी अदालत, न पुलिसका भय, न अमलोंकी

खुशामद, सुख और शान्तिसे जीवन व्यतीत करने लगे। कितनोंहीने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावोंकी एक लहरसी दौड़ने लगी।

लेकिन भगतजी इतने भाग्यशाली न थे। जनताको दिनों-दिन उनके उपदेशोंसे अरुचि होती जाती थी। यहांतक कि बहुधा उनके श्रोताओंमें, पटवारी, चौकीदार, मुदरिस और इन्हीं कर्मचारियोंके मेली मित्रोंके अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगतजीका बड़ा आदर सत्कार करते, जरा देरके लिये भगतजीके आंसू पुंछ जाते लेकिन क्षणभरका सम्मान आठों पहरके अपमानकी बराबरी कैसे करता, जिधर निकल जाते उधर ही उंगलियां उठने लगतीं। कोई कहता खुशामदी टट्टू है, कोई कहता खाफिया पुलिसका भेदी है। भगतजी अपने प्रतिद्वन्दीकी बड़ाई और अपनी लोकनिन्दापर दांत पीस रह जाते थे। जीवनमें यह पहलाही अवसर था कि उन्हें अपने शत्रुके सामने नीचा देखना पड़ा—चिरकालसे जिस कुल मर्यादाकी रक्षा करते आये थे और जिसपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे वह धूलमें मिल गयी। यह दाहमय चिन्ता उन्हें एक क्षणके लिये चैन न लेने देती। नित्य यही समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊं, अपने प्रतिपक्षीको क्योंकर पददलित करूं, उसका गरूर क्योंकर तोड़ूं।

अन्तमें उन्होंने सिंहको उसकी मान्दमें ही पछाड़नेका निश्चय किया।

५

सन्ध्याका समय था। चौधरीके द्वारपर एक बड़ी सभा हो रही थी। आसपासके गांवोंके किसान भी आ गये थे, हजारों आदमियोंकी भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य विषयक उपदेश दे रहे थे। बारम्बार भारतमाताकी जयकारकी ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियोंका जमाव था। चौधरीने अपना उपदेश समाप्त किया, और अपनी गद्दीपर बैठे। स्वयंसेवकोंने स्वराज्यफण्डके लिये चन्दा जमा करना शुरू किया कि इतनेमें भगतजी न जानें-किधरसे लपके हुए आये और श्रोताओंके सामने खड़े होकर उच्च-स्वरसे बोले:—

भाइयो, मुझे यहां देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराज्यका विरोधी नहीं हूं। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराज्यका निन्दक हो, लेकिन इसके प्राप्त करनेका वह उपाय नहीं है जो चौधरीने बतलाया है और जिसपर तुमलोग लट्टू हो रहे हो। जब आपसमें फूट और राड़ है तो पंचायतोंसे क्या होगा? जब विलासिताका भूत सिरपर सवार है तो [illegible] जे टेगा, मदिराकी दूकानोंका बहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियायन, अद्धी, तंजेबसे कैसे पिंड छूटेगा? जब रोब और हुकूमतकी लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे, विधर्मी शिक्षाकी बेड़ीसे कैसे मुक्त हो सकोगे? स्वराज लेनेका केवल एक ही उपाय है और वह आत्मसंयम है, यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगोंको समूल नष्ट करेगी। आत्माकी दुर्बलता ही परा-

धीनताका मुख्य कारण है, आत्माको बलवान बनाओ, इन्द्रियोंको साधो, मनको वशमें करो, तभी तुममें भ्रातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्षा और द्वेषका नाश होगा, तभी भोग-विलाससे मन हटेगा, तभी नशेबाज़ीका दमन होगा। आत्मबलके बिना स्वराज कभी उपलब्ध न होगा। स्वार्थ सब पापोंका मूल है, यही तुम्हें अदालतोंमें ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षाका दास बनाये हुए है। इस पिशाचको आत्मबलसे मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जायगी। सब जानते हैं मैं ४० सालसे अफीमका सेवन करता हूं, आजसे मैं अफीमको गऊका रक्त समझता हूं। चौधरीसे मेरी तीन पीढ़ियोंकी अदावत है, आजसे चौधरी मेरे भाई हैं। आजसे मेरे घरके किसी प्राणीको घरसे कते सूतसे बुने हुए कपड़ोंके सिवाय कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दण्ड चाहो दो। बस, मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करें।

यह कहकर भगतजी घरकी ओर चले कि चौधरी दौड़कर उनके गलेसे लिपट गये। तीन पुश्तोंकी अदावत एक क्षणमें शान्त हो गयी।

उसी दिनसे चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराजका उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गयी और वह निश्चय करना कठिन था कि दोनोंमेंसे जनता किसका अधिक सम्मान करती है।

प्रतिद्वन्द्विताकी चिनगारीने दोनों पुरुषोंके हृदय दीपकको प्रकाशित कर दिया था।

❋ समाप्त ❋

शांति

१

जब मैं ससुराल आई तो बिल्कुल फूहर थी। न पहनने ओढ़ने-का सहूर न बातचीत करनेका ढंग। सिर उठाकर किसीसे बातचीत न कर सकती थी। आंखें अपने आप झपक जाती थीं। किसीके सामने जाते शरम आती, स्त्रियोंतकके सामने बिना घूंघटके झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी, पर उपन्यास नाटकादिके पढ़नेमें आनन्द न आता था। फुर्सत मिलनेपर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्यकृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवताने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्योंको इतना उच्च, तथा विचारवान न समझती थी। मैं दिनभर घरका कोई न कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता तो चर्खेपर सूत कातती थी। अपनी बूढ़ी साससे थरथर कांपती थी। एक दिन दालमें नमक अधिक हो गया, ससुरजीने भोजनके समय सिर्फ इतना ही कहा, "नमक ज़रा अन्दाजसे डाला करो" इतना सुनते ही हृदय कांपने लगा। मानों मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुंचायी जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहरपन मेरे बाबूजी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षाकी ऊंचीसे ऊंची डिगरियां पाई थीं। वह मुझपर प्रेम अवश्य करते थे, पर उस प्रेममें दयाकी मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियोंके रहन सहन और शिक्षाके सम्बन्धमें उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारोंसे बहुत ही नीचे देखकर कदाचित् मन ही मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देखकर वह रीति, रवाजपर झुंझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठकर बातचीत करनेमें ज़रा भी आनन्द न आता था। सोने आते तो कोई न कोई अंग्रेजी पुस्तक साथ लाते और नींद न आनेतक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण दृष्टिसे देखकर उत्तर देते, तुम्हें क्या बतलाऊं, यह आसकर बाइल्डकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी योग्यतापर लज्जित थी। मनमें आता मैं ऐसे उच्च विचार पुरुषके योग्य नहीं हूं। मुझे तो किसी उजड्डके घर पड़ना था। बाबूजी मुझे निरादरकी दृष्टिसे नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्यकी बात थी।

एक दिन संध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरतजी रामचन्द्रजीकी खोजमें निकले थे। उनका करुणविलाप तथा वार्तालाप पढ़कर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। हृदय उमड़ा आता था कि इतनेमें बाबूजी कमरेमें आये, और मैंने पुस्तक तुरन्त बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहरपनको भरसक प्रकट न होने देती। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली, पूछा, रामायण है न ?

मैंने अपराधियोंकी भांति देखते हुए कहा, हां, ज़रा देख रही थी।

बाबूजी—इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी है, भावोंसे भरी हुई है, लेकिन इसमें मानव-चरित्रको वैसी खूबीसे नहीं दिखाया गया है, जैसा अंग्रेज या फ्रान्सीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझमें तो न आयगा लेकिन कहनेमें क्या हरज है, यूरोपमें आजकल "स्वाभाविकता" (Realism) का ज़माना है। वे लोग मनोभावोंके उत्थान और पतनका ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है। हमारे यहां कवियोंको पगपगपर धर्म तथा नीतिका ध्यान रखना पड़ता है इसलिए कभी कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है और यही त्रुटि तुलसीदासमें भी है।

मेरी समझमें उस समय कुछ भी न आया, बोली, मेरे लिए तो यही बहुत है, अंग्रेजी पुस्तकें कैसे समझूं ?

बाबूजी—कोई कठिन बात नहीं है। एक घंटा भी रोज पढ़ो तो थोड़े समयमें यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर सकती हो। पर तुमने तो मानों मेरी बातें न माननेकी सौगन्ध ही खा ली है। तुम्हें कितना समझाया कि मुझसे शरम करनेकी आवश्यकता नहीं, पर तुम्हारे ऊपर कुछ प्रभाव न पड़ा। कितना कहता हूं कि ज़रा स्वच्छ साफ रहा करो, परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृंगार भी होता रहे, लेकिन जान पड़ता है कि तुम्हारी दृष्टिसे उसकी कुछ भी मर्यादा नहीं है। या शायद तुम समझती हो कि

मेरे ऐसे कुरूप मनुष्यके लिए तुम चाहे जैसा भी रहो आवश्यकता-से अधिक अच्छी हो। मानों यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूं तो स्वभावतः मेरी इच्छा होती है कि उस द्रव्यका सबसे उत्तम व्यय हो, परन्तु तुम्हारा फूहरपन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रमपर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पतिसेवा करने और एकादशी व्रत रखनेके लिए नहीं हैं, उनके जीवनका लक्ष्य इससे बहुत ऊंचा है। वह मनुष्योंके समस्त सामाजिक, और मानसिक विषयोंमें समान रूप-से भाग लेनेकी अधिकारिणी हैं। उन्हें मनुष्योंकी भांति स्वतन्त्र रहनेका भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बन्दी दशा देख-कर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री, पुरुषकी अर्धांगिनी मानी गयी है। लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक, किसी आवश्यकताको पूरा नहीं कर सकती हो। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार विचार अलग, आमोद-प्रमोदके विषय अलग। जीवनके किसी कार्यमें मुझे तुमसे किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार कर सकती हो कि ऐसी दशामें मेरी जिन्दगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबूजीका कहना बिल्कुल यथार्थ था। मैं उनके गलेमें एक जंजीरकी भांति पड़ी हुई थी। उस दिनसे मैंने उन्हींके कहे अनु-सार चलनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। अपने देवताको किस भांति अप्रसन्न करती?

२

यह तो कैसे कहूं कि मुझे पहनने ओढ़नेसे प्रेम था ही नहीं। था और उतना ही था जितना दूसरी स्त्रियोंको होता है। जब बालक और युवा पुरुषतक शृंगार पसन्द करते हैं तो मैं तो स्त्री ठहरी। मन भीतर ही भीतर मचलकर रहता था। दूसरे मेरे मायकेमें मोटा खाने मोटा पहननेकी चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथोंसे सूत काततीं और जुलाहेसे उसीके कपड़े बुनवा लिये जाते। बाहरसे बहुत कम कपड़े आते थे। मैं कभी ज़रा महीन कपड़ा बनवाना चाहती और शृंगारकी ओर रुचि दिखाती तो वे फौरन टोकतीं और समझातीं कि यह साज सामान भले घरकी लड़कियों-को शोभा नहीं देते। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी मुझे दर्पणके सामने देख लेतीं तो झिड़कने लगतीं। परन्तु अब बाबूजी-की ज़िदसे मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव शृंगारपर नाक भौं सिकोड़तीं, पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबूजीकी प्रेम-परिपूर्ण दृष्टिके लिए मैं झिड़कियां भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारोंमें समानता आती जाती थी, वह अधिक प्रसन्न-चित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फैशनेबुल साड़ियां, सुन्दर जाकटें, गाउन, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते; पर मैं इन वस्तुओंको धारणकर किसीके सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबूजीके ही सामने पहननेके लिये रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने

पतिकी प्रसन्नताके लिये क्या नहीं कर सकती ? अब घरके काम-काजमें मेरा जी न लगता। मेरा कुछ समय तो बनाव श्रृंगार तथा पुस्तकावलोकनमें ही बीतने लगा। पुस्तकोंसे मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभीतक मैं अपने सास ससुरका लिहाज़ करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहनकर निकलनेका साहस न होता था। पर मुझे उनकी अभिमानपूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती जब मेरा पति सैकड़ों रुपये महीना कमाता है तो घरमें मैं चेरी बनकर क्यों रहूं ? यों अपनी इच्छासे चाहे जितना काम करूं। वह मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं ? मुझमें आत्माभिमानकी मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्मां मुझे कोई काम करनेको कहतीं तो मैं अदबदाके उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा, सबेरेके जलपानके लिए कुछ दालमोट बना लो। मैं बात अनसुनी कर गयी। अम्मांने कुछ देरतक मेरी बाट देखी, पर जब मैं अपने कमरे-से न निकली तो उन्हें गुस्सा चढ़ आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृतिकी थीं। तनिक-सी बातपर तिनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठाका इतना अभिमान था कि मुझे बिल्कुल लौंडी ही समझती थीं। लेकिन अपनी पुत्रियोंसे सदैव नम्रतासे पेश आतीं। बल्कि मैं तो यह कहूंगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा था। वह क्रोधमें भरी हुई मेरे कमरेके द्वारपर आकर बोलीं, तुमसे मैंने दालमोट बनानेको कहा था, बनाया ? मैं कुछ रुष्ट होकर बोली, अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्माँ—तो तुम्हारी जानमें दिनभर पड़े रहना ही बड़ा काम है। यह आजकल तुम्हें क्या हो गया है? किस घमण्डमें हो? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूं? इस घमण्डमें न भूलना। तुम्हारा पति लाख कमाये, लेकिन घरमें राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है तो तुम्हें मलकिन बननेकी हवस हो रही है। लेकिन उसे पालने पोसने तुम नहीं आई थी; मैंने ही उसे पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाया है। वाह! कलकी छोकड़ी और अभीसे यह गुमान?

मैं रोने लगी। मुंहसे एक बात न निकली। बाबूजी उस समय ऊपर कमरेमें बैठे कुछ पढ़ रहे थे। यह बातें उन्होंने सुनी, उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रातको जब वह घरमें आये तो बोले, देखा तुमने आज अम्मांका क्रोध! यही अत्याचार है जिनसे स्त्रियोंको अपनी जिन्दगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातोंसे हृदयमें कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो जाता है, और मनुष्यकी शिक्षोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है जैसे जल, धूप और वायुके बिना पौदे सूख जाते हैं। हमारे घरोंमें यह बड़ा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुंह नहीं खोल सकता। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिए लज्जाका विषय होगा और यही बंधन तुम्हारे लिये भी हैं। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशामें दो ही बातें

सम्भव हैं या तो सदैव उनकी घुड़कियों झिड़कियोंको सहे जाओ या अपने लिये कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ो। अब इस बातकी आशा करना कि अम्मांके स्वभावमें कोई परिवर्तन हो, बिल्कुल असम्भव है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है?

मैंने डरते डरते कहा, आपकी जो आज्ञा हो वह करूं। अब कभी न पढ़ूं लिखूंगी। जो कुछ वह कहेंगी। वही करूंगी। यदि वह इसीमें प्रसन्न हैं तो यही सही, मुझे पढ़-लिखकर क्या करना है?

बाबूजी—पर मैं यह नहीं चाहता। अम्मांने आज आरंभ किया है। अब रोज बढ़ती ही जायंगी। मैं तुम्हें जितना ही सभ्य तथा विचारशील बनानेकी चेष्टा करूंगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा। और उनका गुस्सा तुमपर निकलेगा। उन्हे पता नहीं कि जिस आब हवामें उन्होंने अपनी जिन्दगी बिताई है वह अब नहीं रही। विचार स्वातन्त्र्य और समयानुकूलता उनकी दृष्टिमें अधर्मसे कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहरमें चलकर अपना अड्डा जमाऊं। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती। इसलिये किसी बहानेकी भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजवीजके विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहनेसे भय लगता था, तथापि वहां स्वतन्त्र रहनेकी आशाने मनको प्रफुल्लित कर दिया।

३

उसी दिनसे अम्मांने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदोंमें मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत

दुखदायी होता था। इसके बदले यदि वह मुझे कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदयसे उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्यपर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदयसे अपने आदरको मिटानेके समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबूजीपर कोई मोहनमंत्र फूँक दिया है, वह मेरे इशारोंपर चलते हैं। और यथार्थमें बात उल्टी थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमीका त्योहार आया। घरमें सब लोगोंने व्रत रखा। मैंने भी सदैवकी भांति व्रत रखा। ठाकुरजीका जन्म रातको बारह बजे होनेवाला था, हम सब बैठी गाती बजाती थीं। बाबूजी इन असभ्य व्यवहारोंके बिलकुल विरुद्ध थे। वह होलीके दिन रंग भी न खेलते, गाने बजानेकी तो बात ही अलग। रातको एक बजे जब मैं उनके कमरेमें गई तो मुझे समझाने लगे, इस प्रकार शरीरको कष्ट देनेसे क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है, पर इस गाने बजानेसे क्या फायदा है? इस ढोंगका नाम धर्म नहीं है! धर्मका सम्बन्ध सचाई और ईमानसे है, दिखावेसे नहीं।

बाबूजी स्वयं इसी मार्गका अनुसरण करते थे। वह भगवद्गीताकी अत्यन्त प्रशंसा करते और मानते थे, पर उसका पाठ कभी न करते। उपनिषदोंकी प्रशंसामें उनके मुखसे मानों पुष्पवृष्टि होने लगती पर मैंने उन्हें कभी कोई उपनिषद् पढ़ते नहीं देखा। वह हिंदू धर्मके गूढ़ तत्वज्ञानपर लट्टू थे पर इसे समयानुकूल न समझते थे। विशेषकर वेदान्तको तो भारतकी अवनतिका मूलकारण समझते थे।

वह कहा करते कि इसी वेदान्तने हमको चौपट कर दिया, हम दुनियाके पदार्थोंको तुच्छ समझने लगे जिसका फल अबतक भुगत रहे हैं। अब उन्नतिका समय है। चुपचाप बैठे रहनेसे निर्वाह नहीं, संतोषने ही भारतको गारत कर दिया।

उस समय उनका उत्तर देनेकी शक्ति मुझमें कहां थी? हां, अब जान पड़ता है कि वह यूरोपीय सभ्यताके चक्करमें पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंढा हो चला है।

४

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये, बाबूजीने पहलेसे ही एक दो मंजिला मकान ले रखा था। सब तरहसे सजा सजाया। हमारे यहां पांच नौकर थे। दो स्त्रियां, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घरके कुल काम काजसे छुट्टी पा गयी। कभी जी घबराता तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

यहां फूल और पीतलके बर्तन बहुत कम थे। चीनीकी रिकाबियां और प्याले आलमारियोंमें सुसज्जित थे। भोजन मेजपर आता था। बाबूजी बड़े चावसे भोजन करते। मुझे पहले कुछ शरम आती थी, लेकिन धीरे धीरे मैं भी मेज ही पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसीसे मिलने दस पग भी जाना होता तो गाड़ी तैयार करायी जाती। बाबूजी कहते, "यही फैशन है।"

बाबूजीकी आमदनी अभी बहुत कम थी। भलीभांति खर्च भी न चलता। कभी कभी मैं उन्हें चिन्ताकुल देखती तो समझाती कि

जब आय इतनी कम है तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है ? कोई छोटासा मकान ले लो, दो नौकरोंसे भी काम चल सकता है। लेकिन बाबूजी मेरी बातोंपर हंस देते और कहते, मैं अपनी दरिद्रताका ढिंढोरा अपने आप क्यों पीटूं ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होनेसे अधिक दुःखदाया होता है। भूल जाओ कि हमलोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आयेंगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं-का अधिक होना ही द्रव्योपार्जनकी पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियां विकसित हो जाती हैं और हम उन कष्टोंको झेलते हुए आगे पग धरनेके योग्य होते हैं। सन्तोष दरिद्रताका दूसरा नाम है।

अस्तु। हम लोगोंका खर्च दिनदिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताहमें तीन बार थियेटर ज़रूर देखने जाते। सप्ताहमें एक बार मित्रोंको भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा कि जीवनका लक्ष्य सुख-भोगही है। ईश्वरको हमारी और उपासनाकी इच्छा नहीं है। उसने हमको उत्तम उत्तम वस्तुएं भोगनेके लिये ही दी है यही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाइ लेडो मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घरमें एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दोंमें फंसकर मैं रामायण और भक्तमालको भूल गयी। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय होने लगीं! देवताओं परसे भी विश्वास उठ गया।

धीरे धीरे यहांके बड़े लोगोंसे स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा यह एक बिल्कुल नयी सोसाइटी थी। इसका रहन सहन, आहार

व्यवहार और विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसाइटीमें ऐसी जान पड़ती जैसे मोरोंमें कौआ। इन लेडियोंकी बातचीत कभी थियेटर और घुड़दाड़ के विषयपर होती, कभी टेनिस, समाचारपत्रों और अच्छे अच्छे लेखकोंके लेखोंपर। उनके चातुर्य्य, बुद्धिकी तीव्रता, उनकी फुरती और चपलतापर मुझे अचम्भा होता। ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाशकी पुतलियां ही हैं। वे बिना घूंघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहसपर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी कभी अपने साथ ले जानेकी चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिन्तित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे, परन्तु मिसेज दासके माथेपर चिन्ताका चिह्नतक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीतालमें तपेदिकका इलाज करा रहे थे, पर मिसेज़ बागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्थामें मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूं।

इन लेडियोंकी रीति नीतिमें एक आकर्षण शक्ति थी जो मुझे खींचे लिए जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोदप्रमोदके लिए उत्सुक देखती और मेरा भी जी चाहता कि उन्हींकी भांति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका अंग्रेजी वार्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियां हैं, मैं अपनी इन त्रुटियोंकी पूर्त्तिके लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीचमें मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबूजी पहलेसे मेरा अधिक आदर करते थे, मुझे सदैव "डियर"

"डार्लिङ्ग" कहकर सम्बोधन करते, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकारकी बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता मानो बातें हृदयसे नहीं केवल मुखसे निकलती हैं, उनके स्नेह और प्यार-में हार्दिक भावोंकी जगह अलङ्कार ज़्यादा होता था। किन्तु और भी अचम्भेकी बात तो यह थी कि अब मुझे भी बाबूजी पर वह पहलेकीसी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी शिर पीड़ासे मुझे हृदय-पीड़ा न होती थी। मुझमें आत्मगौरवका आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव शृंगार इसलिए करती थी कि संसारमें यह भी मेरा एक कर्त्तव्य है, इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुषकी व्रत-धारिणी हूं। अब मुझे भी अपनी सुन्दरतापर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरेके लिए न जीती थी, अपने लिए जीती थी। त्याग तथा सेवाका भाव मेरे हृदयसे लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी परन्तु हृदय अपनी सुन्दरताका सराहना सुननेके लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबूजी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीचमें केवल एक परदेकी आड़ थी! बाबूजी मेरी इस झिझकसे बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यतामें काला धब्बा समझते थे। कदाचित् वह दिखाना चाहते थे, कि मेरी स्त्री इसलिए परदेमें नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्र आभूषणोंमें किस से कम है, बल्कि इसीलिए है कि अभी उसे लज्जा आ जाती है। मुझे किसी बहानेसे बारम्बार पर्दे के निकट बुलाते जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और मेरे वस्त्राभूषण देख लें। अन्तमें कुछ दिन

बाद ऐसा ही हुआ। इलाहाबाद आनेके पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबूजी-के साथ बिना पर्देके सैर करने लगी। सैरके बाद टेनिसकी नौबत पहुंची। अन्तको मैंने क्लबमें जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा सा मालूम होता था मानों वे लोग व्यायाम-के लिए नहीं, बल्कि फैसनके लिए टेनिस खेलने आते थे। वह कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काममें, झुकनेमें, दौड़नेमें, उचकने में एक कृत्रिमता थी जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेलका प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखाव है।

क्लबमें इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वांग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अंग्रेजीके कुछ चुने हुए शब्दोंका प्रयोग करते थे जिनमें कोई सार न होता था, नकली हंसी हंसते थे जिसका कोई अवसर न होता था। स्त्रियोंकी यह फूहर निर्लज्जता और पुरुषोंकी वह भावशून्य नारीश्रद्धा मुझे तनिक भी न भाती थी। चारों ओर अंगरेजी चाल ढालकी एक हास्यजनक नकल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वही रङ्ग पकड़ने लगी, और उन्हींका अनुकरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शनलोलुपता-में कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृंगार करती, नित्य नया-रूप धरती। केवल इसलिए कि क्लबमें मैं सबकी दृष्टिकी लक्ष्य बन जाऊं। अब मुझे बाबूजीकी सेवा सत्कारसे अधिक अपने बनाव-शृंगारकी धुन रहती थी। यहांतक कि यह शौक एक नशा सा बन गया। इतना ही नहीं, बल्कि लोगोंसे अपनी सौंदर्य प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान मिश्रित आनन्दका अनुभव होने लगा। मेरी

लज्जाशीलताकी सीमायें विस्तृत हो गईं। वह दृष्टपात जो कभी मेरे शरीरके प्रत्येक रोयेंको खड़ा कर देता, और हास्यकटाक्ष जो कभी मुझे विष खा लेनेको प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्मादपूर्ण हर्ष होता था। परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्थापर आन्तरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबराहट होती। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊंगी, परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती थी। मैं अपने वशमें न थी। सद्कल्पनायें निर्बल हो गयी थीं।

बाबूजीके स्वभावमें एक और परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिन्तित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिन्ताने घेर रक्खा है या कोई बीमारी हो गई है। मुंह बिलकुल सूखा रहता, तनिक तनिकसी बातपर नौकरोंसे झल्लाने लगते, और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले, वह सौ काम छोड़कर क्लब अवश्य जाते थे, वहां गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी। पर अब अधिक-तर वह अपने कमरेमें आराम कुर्सीपर लेटे हुए समाचार-पत्र और पुस्तकें देखा करते। मेरी समझमें न आता कि बात क्या है?

एक दिन उन्हें बड़े जोरका बुखार आया, दिनभर बेहोश पड़े रहे। परन्तु मुझे उनके पास बैठनेमें अनकुस सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यासमें लगा हुआ था; उनके पास जाती और पलभरमें फिर लौट आती। टेनिसका समय आया तो मैं द्विविधामें पड़ी कि जाऊं या न जाऊं, देरतक चित्तमें यह संग्राम होता रहा। अन्तमें

मैंने निर्णय किया कि मेरे यहां रहनेसे यह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायंगे, इससे यहां बैठा रहना बिल्कुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने और रैकेट लेकर क्लबघर जा पहुंची। वहां मैंने मिसेज दास और मिसेज बागड़ीसे बाबूजीकी दशा बतलाई, और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्टमें जाने लगे और मिस्टर दासने मुझसे चलनेको कहा तो मैं एक ठंढी आह भरकर कोर्टमें जा पहुंची और खेलने लगी।

आजसे तीन वर्ष पूर्व बाबूजीको इसी प्रकार बुखार आ गया था, मैं रातभर उन्हें पंखा झलती रही। हृदय व्याकुल था और यही जी चाहता था कि इनके बदले मुझे बखार आ जाय, परन्तु यह उठ बैठें! पर अब हृदय तो स्नेहशून्य हो गया था। दिखाव अधिक था। अकेले रोनेकी मुझमें क्षमता न रह गयी थी। मैं सदैवकी भांति रातको नौ बजे लौटी। बाबूजीका जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने मुझे केवल दबी दृष्टिसे देखा और करवट बदल ली। परन्तु मैं लेटी तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वर्थपरता और प्रमोदासक्तिपर धिक्कारता रहा।

मैं अब अंग्रेजी उपन्यासोंको समझने लगी थी। हमारी बातचीत अधिक उत्कृष्ट और आलोचनात्मक होती थी।

हमारी सभ्यताका आदर्श अब बहुत उच्च हो गया था। हमको अब अपनी मित्र-मंडलीसे बाहर दूसरोंसे मिलने जुलनेमें संकोच होता था। अब हम अपनेसे लघुश्रेणीके लोगोंसे बोलनेमें अपना अपमान समझते थे। नौकरोंको अपना नौकर समझते थे, और

बस, हमको उनके निजी मुआमिलोंसे कुछ मतलब नहीं था, हम उनसे पृथक रहकर अपना रोब उनके ऊपर जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगोंको साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियोंको देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी। उनमें शिष्टता न थी। खैर।

बाबूजीका जी दूसरे दिन भी न संभला। मैं क्लब न गयी। परन्तु जब लगातार तीन दिनतक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज दासने बारम्बार एक नर्स बुलानेका आदेश किया तो मैं सहमत हो गयी। उस दिनसे रोगीकी सेवा शुश्रूषासे छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गयी थी परन्तु मेरा जी वहीं लगा रहता था बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्याग पर क्रोध आता था।

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सीपर लेटी हुई एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मनमें यह विचार उठा कि बाबूजीका बुखार असाध्य हो जाता तो ? परन्तु इस विचारसे मुझे लेशमात्र भी दुःख न हुआ। मैं इस शोकमय कल्पनाका मन ही मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज दास, मिसेज नायडू, मिसेज श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज खरगा, अवश्य ही मेरे दुःखमें सम्मिलित होंगी। उन्हें देखते ही मैं सजलनेत्रोंसे उठूंगी और कहूंगी, बहनो! मैं लुट गई, हा मैं लुट गई!! अब मेरा जीवन अंधेरी रातके भयावह बन या स्मशानके दीपकके समान है! परन्तु मेरी अवस्थापर दुःख न प्रकट करो। मुझपर जो पड़ेगी उसे मैं उस महान आत्माके मोक्षके विचारसे सहन कर लूंगी।

मैंने इस प्रकार मनमें एक शोकपूर्ण व्याख्यानकी रचना कर डाली। यहांतक कि मैंने अपने उस वस्त्रके विषयमें भी निश्चय कर लिया जो मृतकके साथ स्मशान जाते समय पहनूंगी।

इस घटनाकी शहर भरमें चर्चा हो जायगी। सारे कंटून्मेंटके लोग मुझे सहवेदनाके पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित करा दूंगी कि मैं प्रत्येक शोकपत्रके उत्तर देनेमें असमर्थ हूं। हृदयके टुकड़े टुकड़े हो गये हैं, उसे रोनेके सिवा और किसी कामके लिए समय नहीं है। मैं इसके लिए उन लोगोंकी कृतज्ञ हूं, और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करती हूं कि वह मृतककी आत्माकी सद्गतिके निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारोंमें डूबी हुई थी कि नर्सने आकर कहा कि आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जानेका समय था मुझे उनका बुलाना अखर गया, लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गयी। बाबूजीको बीमार हुए लगभग एक मास हो गया था, वह अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनय-पूर्ण दृष्टिसे देखा। उसमें आंसू भरे हुए थे। मुझे उनपर दया आयी। बैठ गयी और ढाढस देते हुए बोली, क्या करूं? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊं?

बाबूजी आंखें नीची करके अत्यन्त करुण भावसे बोले, मैं यहां कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्मांके पास पहुंचा दो।

मैंने कहा, क्या आप समझते हैं कि वहां आपकी चिकित्सा यहांसे अच्छी होगी?

बाबूजी बोले, क्या जानें क्यों मेरा जी अम्मांके दर्शनोंको लालायित हो रहा है? मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहां बिना दवा-दर्पनके भी अच्छा हो जाऊंगा।

मैं—यह आपका केवल विचारमात्र है।

बाबूजी—शायद ऐसा ही हो, लेकिन मेरी विनय स्वीकार करो। मैं इस रोगसे नहीं, इस जीवनसे ही दुखित हूं।

मैंने अचरजसे उनकी ओर देखा।

बाबूजी फिर बोले, हां मैं इस जिन्दगीसे तंग आ गया हूं। मैं अब समझ रहा हूं कि मैं जिस स्वच्छ लहराते हुए निर्मल जलकी ओर दौड़ा जा रहा था वह यह भूमि है। मैं इस प्रकारके जीवनके बाहरी रूपपर लट्टू हो रहा था परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओंका बोध हो रहा है। इन दो वर्षोंमें मैंने इस उपवनमें खूब भ्रमण किया और उसे आदिसे अन्ततक कंटकमय पाया। यहां न तो हृदयकी शांति है न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त, अशान्तिमय स्वार्थपूर्ण बिलासयुक्त जीवन है। यहां न नीति है न धर्म, न सहानुभूति और न सहृदयता। परमात्माके लिए मुझे इस अग्निसे बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्मांको एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहां आयेंगी। अपने अभागे पुत्रका दुःख उनसे न देखा जायगा, उन्हें इस सोसाइटीकी हवा अभी नहीं लगी है, वह आयेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ ओषधियोंका काम करेगी। उनके मुखपर वह ज्योति प्रकाशमान होगी जिसके लिए मेरे नेत्र तरस

रहे हैं। उनके हृदयमें स्नेह है, सत्य है, विश्वास है। यदि उनकी गोदमें मैं मर जाऊं तो मेरी आत्माको शांति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुखारकी बकझक है। नर्ससे कहा, जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डाक्टरके पास जाती हूं। मेरा हृदय एक अज्ञात भयसे कांपने लगा। नर्सने थरमामीटर निकाला, परन्तु ज्यों ही वह बाबूजीके समीप गयी, उन्हों ने उसके हाथसे वह यंत्र छीनकर पृथ्वीपर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये और मेरी ओर एक अवहेलनापूर्ण दृष्टिसे देखकर कहा, साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लबघर जाती हूं, जिसके लिए तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाड़ी पर उधरसे घूमती हुई यदि डाक्टरके पास जाओ तो उनसे कह देना कि यहां टेम्परेचर उस बिन्दुपर आ पहुंचा है जहां आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गयी, और हृदयमें एक करुण चिन्ताका संचार होने लगा। गला भर आया। बाबूजीने नेत्र मूंद लिये थे और उनका सांस वेगसे चल रहा था। मैं द्वारकी ओर चली कि किसीको डाक्टरके पास भेजूं। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतनेमें बाबूजी उठ बैठे और विनय भावसे बोले, श्यामा! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं। बात दो सप्ताहसे मनमें थी, पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूं। मैं अब फिर अपने घर जाकर वही पहलेकी सी जिन्दगी बिताना चाहता हूं। मुझे अब इस जीवनसे घृणा हो गयी है। और यही मेरी बीमारीका मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं, वरन मानसिक कष्ट है। मैं

फिर तुम्हें वही पहलेकीसी सलज्ज, नीचा सर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घरका काम काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वरसे डरनेवाली, पतिश्रद्धासे परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूं, मैं विश्वास करता हूं कि तुम मुझे निराश न करोगी। मैं तुमको सोलहो आना अपना बनाना चाहता हूं। और सोलहो आना,तुम्हारा बनना चाहता हूं। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवनमें वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओंका पालन किया है, इस समय निराश न करना, नहींतो इस कष्ट और शोकका न जाने कितना भयंकर परिणाम हो!

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मनमें सोचने लगी, इस स्वतन्त्र जीवनमें कितना सुख था। यह मजे वहां कहां? क्या इतने दिन स्वतंत्र पवनमें विचरण करनेके पश्चात् फिर उसी पिंजरेमें जाऊं? वही लौंडी बनकर रहूं? क्यों, इन्होंने मुझे वर्षों स्वतंत्रता-का पाठ पढ़ाया, वर्षों देवताओंकी, रामायणकी, पूजा पाठ की, व्रत उपवासकी बुराई की, हंसी उड़ाई, और अब जब मैं उन बातोंको भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अन्ध-कूपमें ढकेलना चाहते हैं। मैं उन्हींकी इच्छानुसार चलती हूं फिर मेरा अप-राध क्या है? लेकिन बाबूजीके मुखपर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी, बोली, आखिर आपको यहां क्या कष्ट है?

मैं उनके विचारोंकी तहतक पहुंचना चाहती थी।

बाबूजी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टिसे देखकर बोले,

बहुत ही अच्छा होता कि तुम प्रश्नको मुझसे पूछनेके बदले अपने ही हृदयसे पुछ लेतीं। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूं जो आजसे तीन वर्ष पहले था ? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षाप्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार होकर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था—तुमने चाहे इसे अनुभव न किया हो परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूं—तो मैं कैसे अनुमान करूं कि उन्हीं भावोंने तुम्हें स्खलित न किया होगा ? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न दीखते हैं कि तुम्हारे हृदय पर उन भावोंका और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपनेको ऊपरी बनाव चुनाव और बिलासके भंवरमें डाल दिया है और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुधि नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि, सभ्यता, स्वेच्छाचारिताका भूत स्त्रियोंके कोमल हृदयपर बड़ी सुगमतासे कब्जा कर सकता है। क्या अबसे तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशामें छोड़कर तुम किसी पड़ोसिनके यहां गाने बजाने चली जातीं ? मैं बिछौनेपर पड़ा रहता और तुम किसीके घर जाकर कलोलें करतीं। स्त्रियोंका हृदय आधिक्य प्रिय होता है। परन्तु इस नवीन आधिक्यके बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्यका फल आत्मिक, और शारीरिक अभ्युदय और हृदयकी पवित्रता था। इस आधिक्यका परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखाव और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दासके सम्मुख हंसतीं या बोलतीं तो मैं या तो तुम्हें मार डालता या स्वयं विष पान कर लेता। परन्तु बेहयाई इस जीवनका प्रधान तत्त्व है, मैं सब कुछ स्वयं देखता हूं

और सहता हूं और कदाचित् सहे जाता। यदि इस बीमारीने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहां बैठी भी रहो तो मुझे सन्तोष न होगा क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहां नहीं है। मैंने अपनेको इस इन्द्रजालसे निकालनेका निश्चय कर लिया है, जहां धनका नाम मान है, इन्द्रिय लिप्साका सभ्यता और भ्रष्टताका विचारस्वातंत्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदयपर वज्रपात सा हो गया। बाबूजीका अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदयमें कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यंत्रणा असह्य हो गयी। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी, अन्तरात्माने कहा, अवश्य! मैं अब वह नहीं हूं जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी। इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी। अब यह मेरी दृष्टिमें एक साधारण मनुष्य हैं, मिस्टर क्रासका चित्र मेरे नेत्रोंके सामने खिंच गया? कल मेरे हृदयपर इस दुरात्माकी बातोंका कैसा नशा छा गया था। यह सोचते ही नेत्र लज्जासे झुक गये। बाबूजीकी आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े हीसे प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्साके विचार मेरे हृदयसे दूर हो गये। उसके बदले यह शब्द ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखे हुए नजर आए। "तूने फैशन और वस्त्राभूषणोंमें अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वत्वोंका ज्ञान उदय हो गया है, तुझमें जीवनके सुख भोगनेकी योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़ हृदय और शिक्षा सम्पन्न हो गयी है, लेकिन तेरे आत्मिक बलका विनाश हो गया है। क्योंकि तू अपने कर्त्तव्यको भूल गयी है।"

मैं दोनों हाथ जोड़कर बाबूजीके चरणोंपर गिर पड़ी, कण्ठ रुंध गया, एक शब्द भी मुंहसे न निकला, अश्रुधारा बह चली! अब मैं पुनः अपने घरपर आ गयी हूं। अम्मांजी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं। बाबूजी अब संतुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब स्वयं प्रतिदिन सांध्या वन्दन करते हैं।

मिसेज दासके पत्र कभी कभी आते हैं, वह इलाहाबादी सोसाइटीके नवीन समाचारोंसे भरे होते हैं, मिस्टर क्रास और मिस [illegible]के सम्बन्धमें कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रोंका उत्तर तो दे देती हूं परन्तु चाहती हूं कि वह अब न आते तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनोंकी याद दिलाते हैं जिन्हें मैं भूल जाना चाहती हूं।

कल बाबूजीने बहुत सी पुरानी पोथियां अग्निदेवको अर्पण कीं, उनमें खासकर वाइल्डकी कई पुस्तकें थीं, वह अब अंग्रेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और एमर्सनके सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारतमें फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहलेसे अधिक चलाती हूं क्योंकि इस बीचमें चरखेने खूब प्रचार पा लिया है।

॥ समाप्तः ॥

१–सप्तसरोज

ले० उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजी अपनी प्रतिभाके कारण हिन्दी संसारमें अद्वितीय लेखक माने गये हैं। यह कहानियां उन्हींके कलमकी करामात हैं। इस सप्तसरोज-में सात अति मनोहर उपदेशप्रद गल्पें हैं, जिनका भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें अनुवाद निकल चुका है। यह हिन्दी साहित्यसम्मेलनकी प्रथमा परीक्षा तथा कई राष्ट्रीय पाठशालाओंकी पाठ्यपुस्तकोंमें और सरकारी युनिव-र्सिटियोंकी प्राइजलिस्टोंमें है। मूल्य केवल ॥ƒ। यह चौथा संस्करण है।

२–महात्मा शेखसादी

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

फारसी भाषाके प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद गुलिस्तां बोस्तांके लेखक महात्मा शेखसादीका बड़ा मनोरंजक और उपदेशप्रद जीवनचरित्र, अनूठा भ्रमण वृत्तान्त, नीतिकथायें, गजलें, कसीदे इत्यादिका मनोरंजक संग्रह किया गया है। महात्मा शेखसादीका चित्र भी दिया गया है। मूल्य ॥ƒ

३–विवेक वचनावली

लेखक स्वामी विवेकानन्द

जगत्प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्दजीके बहुमूल्य विचारों और अमूल्य उपदेशोंका बड़ा मनोरंजक संग्रह। बड़ी सीधी सादी और सरल भाषामें प्रत्येक बालक, स्त्री, वृद्धके पढ़ने तथा मनन करने योग्य। ४८ पृष्ठोंका मूल्य ।ƒ

४–जमसेदजी नसरवानजी ताता

लेखक स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०

श्रीमान् धनकुबेर ताताकी जीवनी बड़ी प्रभावशाली और ओजस्विनी भाषामें लिखी गयी है। इस पुस्तकको यू० पी० और बिहारके शिक्षावि-भागने अपने पारितोषिक-वितरणमें रखा है। सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल ।ƒ